व्याख्यान-सार संग्रह पुस्तकमाला का ८ वां पुष्प ।

श्रीमज्जैनाचार्य-

पूज्य श्री जवाहिरलालजी महाराज

के

व्याख्यानों में से-

ब्रह्मचर्य-व्रत ।

श्री सा. पू. हु. म. धा. हितेच्छु श्रावक मंडल रतलाम तरफसे

सम्पादक —

शंकरप्रसाद दीक्षित ।

प्रकाशक—

श्री साधुमार्गी-जैन पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज
के सम्प्रदाय का हितेच्छु श्रावक-मण्डल
रतलाम (मालवा)

वीर संवत	अर्द्धमूल्य	विक्रम संवत
२४५९	=)	१९९०

प्रकाशक—

श्री साधुमार्गी-जैन पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज
की सम्प्रदाय का हितेच्छु श्रावक-मण्डल
रतलाम (मालवा)

प्रथमावृत्ति २०००

मुद्रक—
जीतमल लूणिया,
सस्ता-साहित्य-प्रेस, अजमेर

॥ ॐ ॥

भीनासर निवासी

श्रीमान् सेठ

हजारीमलजी बहादुरमलजी बाँठिया

की

ओर से

अर्द्ध मूल्य में

भेंट ।

दो शब्द ।
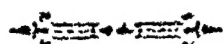
शासन देव की किंचित् कृपादृष्टि के प्रताप से, मण्डल अपने ध्येय की ओर गति करता हुआ व्याख्यानसारसंग्रह पुस्तक-माला का यह आठवाँ पुष्प पाठकों की सेवा में रखने को समर्थ हो सका है। इससे पूर्व प्रकाशित सात पुस्तकों का जनता ने खूब स्वागत किया। कई पुस्तकों के तो थोड़े ही समय में दो-दो-तीन-तीन संस्करण निकालने पड़े। जनता की इस गुणग्राहकता से मण्डल को बहुत प्रोत्साहन मिला और परिणाम-स्वरूप मण्डल यह आठवाँ पुष्प जनता की सेवा में रख सका।

पुस्तक का विषय तो पुस्तक के नाम से ही प्रकट है। रही विषय-प्रतिपादन की बात। इसका निर्णय तो पाठक ही कर सकते हैं, और पाठकों की ओर से सूचना आने पर ही हम यह जान सकते हैं, कि संग्राहक संपादक आदि कार्यकर्त्ताओं को अपने कार्य में कहाँ तक सफलता मिली है।

अन्त में, हम इस बात को स्पष्ट कर देना उचित समझते हैं, कि पूज्यश्री के व्याख्यान मातृ-भाषा में और शास्त्र-सम्मत ही होते हैं, लेकिन कार्यकर्त्ताओं की असावधानी से त्रुटि रहना

सम्भव है। अतः पाठक महाशय किसी त्रुटि के दिखाई देने पर हमें सूचित करने की कृपा करें। हम ऐसे सज्जनों का आभार मानेंगे और आगामी संस्करण में त्रुटि न रहने देने का प्रयत्न करेंगे। किमधिकम्

रतलाम
वैशाखीपूर्णिमा
सं० १९९०

बालचन्द श्रीश्रीमाल,
सेक्रेटरी
वरदभान पीतालिया,
प्रेसीडेंट

अध्याय सूची ।

नाम अध्याय — पृष्ठांक

ब्रह्मचर्य-व्रत ।
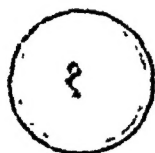
विषय प्रवेश ।
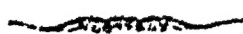
'ब्रह्मचर्य' एक ही शब्द नहीं है, किन्तु 'ब्रह्म' शब्द में 'चर्य, कृत्य प्रत्ययान्त से बना हुआ संस्कृत शब्द है। ब्रह्म + चर्य = ब्रह्मचर्य।

ब्रह्मचर्य शब्द की प्रवृत्ति का निमित्त

'ब्रह्म' शब्द के वैसे तो कई अर्थ होते हैं, परन्तु यहाँ यह शब्द, वीर्य, विद्या और आत्मा के अर्थ में है। 'चर्य' का अर्थ, रक्षण अध्ययन तथा चिन्तन है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अर्थ वीर्यरक्षा, विद्याध्ययन और आत्मचिन्तन है। 'ब्रह्म' का अर्थ उत्तम काम या कुशलानुष्ठान भी होता है, इसलिये ब्रह्मचर्य का अर्थ उत्तम काम या

कुशलानुष्ठान का आचरण भी है। ब्रह्मचर्य शब्द के इन अर्थों पर दृष्टिपात करने से, हम, इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि, जिस आचरण द्वारा आत्मचिन्तन हो, आत्मा अपनेआप को पहचान सके और अपने लिये वास्तविक सुख को प्राप्त कर सके, उस आचरण का नाम 'ब्रह्मचर्य' है। इस अर्थ में, ब्रह्मचर्य शब्द के ऊपर कहे हुये सब अर्थ भी आजाते हैं।

ब्रह्मचर्य की परिभाषा

आत्मचिन्तन के लिये, इन्द्रिय और मन पर विजय पाना आवश्यक है। प्राकृतिक नियमों के अनुसार, इन्द्रियाँ मन के, मन बुद्धि के और बुद्धि आत्मा के अधीन एवम् आत्मा की सहायिका होनी चाहिये। ऐसा होने पर ही आत्मा, अपने आपको जान सकता है। इन्द्रिय, मन और बुद्धि का कर्त्तव्य, आत्मा को बलवान तथा पुष्ट बनाना है। बलवान आत्मा ही अपना स्वरूप जान सकता है, विद्याध्ययन में समर्थ हो सकता है, और उत्तम काम तथा कुशलानुष्ठान कर सकता है। इसलिये इन्द्रिय, मन और बुद्धि का काम आत्मा को बलवान बनाना, आत्मा के हित को दृष्टि में रखना, आत्मा का अहित करनेवाले कामों से दूर रहना है। इन्द्रिय और मन का, अपने इस कर्त्तव्य पर स्थिर रहने का नाम ही 'ब्रह्मचर्य' है।

आत्मा का हित, अपना स्वरूप जानने में है। आत्मा, अपना स्वरूप तभी जान सकता है, जब उसके सहायक एवं सेवक इन्द्रिय तथा मन, उसके आज्ञावर्ती और शुभचिन्तक हों। विपरीतावस्था में, आत्मा का अहित स्वाभाविक ही है। आत्मा के सहायक तथा सेवक वही इन्द्रिएँ और मन हैं, जो सुख की

अभिलाषा से दुर्विषयों की ओर न दौड़ें। इन्द्रियों का, सुख की अभिलाषा से दुर्विषयों की ओर दौड़ना, तथा मन का इन्द्रियानुगामी होना, आत्मा के लिए अहित-कारक है। आत्मा का हित तभी है, जब न तो इन्द्रियें दुर्विषयों की ओर दौड़ें, न इन्द्रियों के साथ ही साथ मन भी आत्मा का अशुभ-चिन्तक बने। इन्द्रिय और मन का दुर्विषयों की ओर न दौड़ना, दुर्विषयों की चाह न करना और सुख की लालसा से उन्हें न भोगना, इसी का नाम 'ब्रह्मचर्य' है।

इन्द्रियें पाँच हैं; कान, आँख, नाक, जीभ और त्वचा। इन पाँचों इन्द्रियों के पांच विषय हैं; शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श। अर्थात् सुनना देखना सूँघना स्वाद लेना और छूना। यद्यपि ये इन्द्रियें हैं सुनने, देखने, सूँघने, स्वाद लेने और स्पर्श करने के लिए ही—इसी कारण इनका नाम भी ज्ञानेन्द्रिय है—लेकिन ये ज्ञानेन्द्रिय तभी होती हैं और तभी आत्मा का हित भी कर सकती हैं, जब दुर्विषयों में लिप्त न हों, इनके भोग में सुख न मानें, और अपनेआप को दुर्विषय-भोग के लिए न समझें। इसी प्रकार मन भी आत्मा का हित करनेवाला तभी है, जब वह अपने पद से भ्रष्ट होकर, इन्द्रियों का अनुगामी न बन जावे और न इन्द्रियों को ही दुर्विषयों की ओर जाने दे। मन का काम इन्द्रियों को सुख देना नहीं, किन्तु आत्मा को सुख देना है और इन्द्रियों को भी उन्हीं कामों में लगाना है, जिनसे आत्मा सुखी हो। इन्द्रियों और मन का, इस कर्त्तव्य को समझ कर इस पर स्थिर रहना, इसी का नाम 'ब्रह्मचर्य' है।

गाँधी जी ने, 'ब्रह्मचर्य' के अर्थ में लिखा है—"ब्रह्मचर्य का

अर्थ, सभी इन्द्रियों और सम्पूर्ण विकारों पर पूर्ण अधिकार। सभी इन्द्रियों को तन, मन और वचन से, सब समय और सब क्षेत्रों में संयम करने को 'ब्रह्मचर्य कहते हैं।"

गाँधी जी कृत ब्रह्मचर्य की परिभाषा

यद्यपि सब इन्द्रियों और मन का दुर्विषयों की ओर न दौड़ने का नाम ब्रह्मचर्य है, लेकिन व्यवहार में, ब्रह्मचर्य का अर्थ, केवल 'वीर्यरक्षा' ही लिया जाता है। इस व्यवहारिक अर्थ-अर्थात् पूर्ण रूपेण वीर्यरक्षा—से भी इन्द्रियों और मन का दुर्विषयों की ओर न दौड़ना ही मतलब निकलेगा। पूर्णतया वीर्यरक्षा तभी हो सकती है, जब सभी इन्द्रियें और मन दुर्विषयों की ओर न दौड़ें। यदि एक भी इन्द्रिय दुर्विषय की ओर दौड़ती है—उसे चाहती है और उस में सुख मानती है—तो सम्पूर्णतया वीर्यरक्षा, कदापि नहीं हो सकती। इसलिये, पूर्णरीति से वीर्यरक्षा का अर्थ भी वही है, जो ऊपर कहा गया है। अर्थात् सर्व प्रकार के असंयम परित्याग रूप-इन्द्रियों और मन का संयम।

ब्रह्मचर्य की व्यवहारिक परिभाषा।

ब्रह्मचर्य, मन, वचन, और शरीर से होता है, इसलिए ब्रह्मचर्य के तीन भेद हो जाते हैं। अर्थात् मानसिक-ब्रह्मचर्य, वाचिक-ब्रह्मचर्य और शारीरिक-ब्रह्मचर्य। मन, वचन, और काय इन तीनों द्वारा पालन किया गया ब्रह्मचर्य ही पूर्ण-ब्रह्मचर्य है। अर्थात् न मन में ही अब्रह्मचर्य की भावना हो, न वचन द्वारा ही अब्रह्मचर्य प्रकट हो और न शरीर द्वारा ही अब्रह्मचर्य की क्रिया की गई हो; इसका नाम पूर्ण ब्रह्मचर्य है। याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा है—

ब्रह्मचर्य के तीन भेद और उनका सम्बन्ध

कायेन मनसा वाचा सर्वावस्था सु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुनंत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ॥

'शरीर, मन और वचन से, सब अवस्थाओं में, सर्वदा और सर्वत्र मैथुन त्याग को ब्रह्मचर्य कहा है ।'

मैथुन में, मैथुनाङ्ग भी शामिल हैं, जिनका वर्णन 'ब्रह्मचर्य की रक्षा के उपाय' प्रकरण में किया गया है ।

कायिक ब्रह्मचर्य उसे कहते हैं, जिसके सद्भाव में, शरीर-द्वारा अब्रह्मचर्य की कोई क्रिया न की गई हो । यानी, शरीर से, अब्रह्मचर्य में प्रवृत्ति न हुई हो । मानसिक-ब्रह्मचर्य उसे कहते हैं, जिसके सद्भाव में दुर्विपयों का चिन्तन न किया जावे, अर्थात् मन में अब्रह्मचर्य की भावना भी न हो । वाचिक-ब्रह्मचर्य उसे कहते हैं, जिसके सद्भाव में, अब्रह्मचर्य-सम्बन्धी वचन न कहा जावे । इन तीनों प्रकार के ब्रह्मचर्य के सद्भाव को—यानी इन्द्रियों और मन का दुर्विपयों की ओर न दौड़ने को—पूर्ण-ब्रह्मचर्य कहते हैं ।

कायिक, मानसिक और वाचिक ब्रह्मचर्य का, परस्पर कर्त्ता, क्रिया, और कर्म का-सा सम्बन्ध है । पूर्ण ब्रह्मचर्य, वहीं हो सकता है, जहाँ उक्त प्रकार के तीनों ब्रह्मचर्य का सद्भाव हो । एक के अभाव में, दूसरे और तीसरे का—एक दम से नहीं तो शनैः-शनैः—अभाव होना, स्वाभाविक है ।

सारांश यह कि, इन्द्रियों का दुर्विषयों से निवृत्त होने, मन का दुर्विपयों की भावना न करने, दुर्विपयों से उदासीन रहने, मैथुनाङ्गों सहित सब प्रकार के मैथुन त्यागने और पूर्ण रीति से,—

वीर्य रक्षा करने एवं कायिक, वाचिक और मानसिक शक्ति को, आत्मचिन्तन, आत्महित-साधन, तथा आत्मविद्याध्ययन में लगा देने का ही नाम 'ब्रह्मचर्य' है।

लाभ और माहात्म्य

तवे सुया उत्तम बंभचेरं ।

सुगड़ायंग सूत्र ।

'ब्रह्मचर्य ही उत्तम तप है ।'

ब्रह्मचर्य से क्या लाभ होता है, और ब्रह्मचर्य का कैसा माहात्म्य है, यह संक्षिप्त में नीचे बताया जाता है ।

आत्मा का ध्येय, संसार के जन्म-मरण से छूटकर, मोक्ष प्राप्त करना है । आत्मा, इस ध्येय को तभी प्राप्त कर सकता है, जब उसे शरीर की सहायता हो—अर्थात शरीर स्वस्थ हो । बिना शरीर के, धर्म नहीं हो सकता और बिना धर्म के, आत्मा अपने उक्त ध्येय तक नहीं पहुँच सकता । काव्य ग्रन्थों में कहा है—

शरीर और धर्म का सम्बन्ध ।

शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम् ।

कुमारसम्भव ।

'शरीर ही, सब धर्मों का प्रथम और उत्तम साधन है ।'

धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यं मूल मुत्तमम् ।

'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का, आरोग्य ही मूल साधन है ।'

आत्मा को, अपने ध्येय तक पहुँचने के लिए शरीर की आवश्यकता है, और वह भी आरोग्यता के साथ। अस्वस्थ शरीर, धर्म-साधन में असमर्थ रहता है। ब्रह्मचर्य से इस अंग की पूर्त्ति होती है, अर्थात्, शरीर स्वस्थ रहता है, कोई रोग, पास भी नहीं फट-कने पाता।

ब्रह्मचर्य से शारीरिक स्वस्थता।

वैद्यक ग्रन्थों में ब्रह्मचर्य से शारीरिक लाभ बताने के लिए कहा है—

मृत्यु व्याधि जरा नाशि पीयूष परमौषधम् ।
ब्रह्मचर्य महायत्नः सत्यमेव वदाम्यहम् ॥

'मैं सत्य कहता हूँ, कि मृत्यु, व्याधि और बुढ़ापे का नाश करने-वाली अमृत के समान औषध, ब्रह्मचर्य ही है। ब्रह्मचर्य, मृत्यु, रोग और बुढ़ापे का नाश करनेवाला महान् यत्न है।'

तात्पर्य यह, कि ब्रह्मचर्य से शरीर स्वस्थ रहता है, जिससे धर्म का पालन होता है। इतना ही नहीं, किन्तु ब्रह्मचर्य का पालन करना भी धर्म ही है; बल्कि धर्म का प्रधान अंग एवं धर्म का प्रधान रक्षक है। इसके लिए प्रश्न व्याकरण सूत्र में कहा है—

ब्रह्मचर्य से धर्म-रक्षा।

पउम सर तलाग पालि भूयं महासगड अरग तुंब भूयं महानगर पागार कवाड फलिह भूयं रज्जु पिणद्धो व्व इंदकेऊ विसुद्धणेगगुण संपिणद्धं जम्मि य भग्गम्मि होइ सहसा सव्वं संभग्गमहियचुणियकुसल्लिय . पलट्ट-

पडिय खंडिय परिसडिय विणासियं विणयसील तव नियम गुण समूहं ।

'ब्रह्मचर्य, धर्म रूप पद्मसरोवर का, पाल के समान रक्षक है। यह दया, क्षमा आदि गुणों का आधार-भूत, एवं धर्म की शाखाओं का आधार-स्तम्भ है। ब्रह्मचर्य, धर्म रूप महानगर का कोट है, और धर्म रूप महानगर का प्रधान रक्षक-द्वार है। ब्रह्मचर्य के खण्डित होने पर, सभी प्रकार के धर्म, और पहाड़ से गिरे हुए कच्चे घड़े के समान चूर-चूर हो जाते हैं।'

ब्रह्मचर्य, धर्म कैसा आवश्यक अंग है, यह बताते हुए, और ब्रह्मचर्य की प्रशंसा करते हुए, मुनि ने कहा है—

पंच महव्वय सुव्वय मूलं समण मणाइल साहु सुचिण्णं ।
वेर विरामण पज्जव साणं सव्व समुद्द महोदहि तित्थं ॥ १ ॥
तित्थकरेहिं सुदेसिय मग्गं नरग तिरिच्छ विवज्जियं मग्गं ।
सव्व पवित्तसुनिम्मिय सारं सिद्धि विमाण अवंगुय दारं ॥२॥
देव नरिंद नमंसिय पूइयं सव्व जगुत्तम मंगल मग्गं ।
दुद्धरिसं गुण नायक मेक्कं मोक्ख पहस्स वडिं सग भूयं ॥ ३ ॥

'ब्रह्मचर्य, पाँच महाव्रत का मूल है अतः उत्तम व्रत है। अथवा—पंच महाव्रत वाले साधुओं के उत्तम व्रतों का, ब्रह्मचर्य मूल है। ऐसे ही श्रावकों के सुव्रतों का भी ब्रह्मचर्य मूल है। ब्रह्मचर्य, दोष रहित है, साधुजनों से भली प्रकार पालन किया गया है, वैरानुबन्ध का अन्त करने वाला है और स्वयम्भूरमण महोदधि के समान दुस्तर संसार से तरने का उपाय है ॥१॥ ब्रह्मचर्य, तीर्थङ्करों द्वारा सदुपदेशित है, उन्हीं के द्वारा इसके पालन का मार्ग बताया गया है, और इसके उपदेश द्वारा, नरक गति तथा तिर्यक गति का मार्ग रोक कर, सिद्ध गति

तथा विमानों के द्वार खोलने का पवित्र मार्ग बताया गया है ॥२॥ यह ब्रह्मचर्य, देवेन्द्र और नरेन्द्रों से पूजित लोगों के लिए भी पूजनीय है; समस्त लोकों में सर्वोत्तम मंगल का मार्ग है; सब गुणों का अद्वितीय तथा सर्व श्रेष्ठ नायक है और मोक्ष मार्ग का भूषण रूप है ॥३॥'

मोक्ष के प्रधान साधन-तप-में भी, ब्रह्मचर्य को पहला स्थान है। जैन-शास्त्रों में ब्रह्मचर्य को सब से उत्तम तप माना गया है, इसका एक प्रमाण इस प्रकरण के प्रारम्भ में दिया ही जा चुका है। प्रश्नव्याकरण सूत्र में भी कहा है—

ब्रह्मचर्य ही तप है।

जंवू ! एत्तो य वंभचेरं तव नियम नाण
दंसण चरित्त सम्मत्त विणय मूलं
थम, नियम गुणप्पहाणजुत्तं हिमवंत महंत
तेय मंतं पसत्थ गंभीर थिमिय मज्झं।

'हे जम्बू ! यह ब्रह्मचर्य, उत्तम तप, नियम ज्ञान, दर्शन, चरित्र, सम्यक्त्व और विनय का मूल है। जिस प्रकार सब पर्वतों में हिमालय महान् और तेजस्वी है, उसी प्रकार सब तपस्याओं में ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ है।'

अन्य ग्रन्थों में भी, ब्रह्मचर्य को उत्तम तप माना गया है। वेद भी, ब्रह्मचर्य को ही तप मानते हैं। जैसे—

तपोवै ब्रह्मचर्यम् ।

श्रुति।

'ब्रह्मचर्य ही तप है।'

गीता में भी ब्रह्मचर्य को तप माना है। उसमें कहा है—

ब्रह्मचर्यमहिंसाच शारीरं तप उच्यते ।

अध्याय १७

'ब्रह्मचर्य और अहिंसा, शरीर का उत्तम तप है।'

इस प्रकार अन्य ग्रन्थकारों ने भी, ब्रह्मचर्य को उत्तम तप माना है।

पारलौकिक-लाभ का ब्रह्मचर्य एक प्रधान साधन है।

ब्रह्मचर्य से पारलौकिक लाभ।

ब्रह्मचर्य से, आत्मा, परलोक सम्बन्धी सभी सुखों को प्राप्त कर सकता है। प्रश्न व्याकरण सूत्र में कहा है—

अंतरप्प ... साहुजणाचरियं ... मोक्खमग्गं
विसुद्ध सिद्धि गइ निलयं सासयमव्वाबाहम पुणब्भवं····

'ब्रह्मचर्य, अन्तःकरण को पवित्र एवं स्थिर रखने वाला है, साधुजनों से सेवित है, मोक्ष का मार्ग और सिद्ध गति का गृह है, शाश्वत है, बाधा रहित है, पुनर्जन्म को नष्ट करने के कारण अपुनर्भव है, प्रशस्त है, रागादि का अभाव करने से सौम्य है, सुख-स्वरूप होने से शिव है, दुःख-सुखादि द्वन्द्वों से रहित होने से अचल है, अक्षय तथा अक्षत है, मुनियों द्वारा सुरक्षित एवं प्रचारित है, भव्य है, भव्यजनों द्वारा आचरित है, शङ्कारहित है, निर्भयता का देनेवाला, विशुद्ध तथा संकटों से दूर रखने वाला एवं खेद और अभिमान को नष्ट करने वाला है।'

प्रश्नव्याकरण सूत्र में आगे कहा है—

जम्मिय आराहियम्मि वय मिणं सव्वं सीलं
तवो य विणओ य संजमो य खंती गुत्ती
मुत्ती तहेव इहलोइय पारलोइय जसेय कित्ती ।

'ब्रह्मचर्य की आराधना से सभी व्रत आराधित होते हैं। तप, शील; विनय, संयम, क्षमा, गुप्ति और मुक्ति सिद्ध होती हैं, तथा इस लोक और परलोक में यश कीर्ति की विजय-पताका फहरानी है।'

अन्य ग्रन्थकार भी ब्रह्मचर्य से परलोक-सम्बन्धी लाभ बताते हुए कहते है—

समुद्र तरणे यद्वत् उपायो नौः प्रकीर्तिता ।
संसार तरणे तद्वत् ब्रह्मचर्य्यं प्रकीर्तितम् ॥

स्मृति ।

'समुद्र से पार जाने के लिए, जिस प्रकार नौका श्रेष्ठ साधन है, उसी प्रकार संसार से तरने के लिए, ब्रह्मचर्य उत्कृष्ट साधन है।'

ग्रन्थकारों ने, यज्ञ भी ब्रह्मचर्य को ही माना है। जैसे—

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्य मेव ।

छान्दोग्योपनिषद्

'जिसे यज्ञ कहते हैं, वह ब्रह्मचर्य ही है।'

संसार-बंधन से छूट कर, मोक्ष प्राप्ति के लिए-चारित्र-धर्म बताते हुए-भगवान ने, जिन पांच महाव्रत का उपदेश दिया है, उनमें से, ब्रह्मचर्य, चौथा महाव्रत है। ब्रह्मचर्य के विना, चारित्र-धर्मका पूर्णरूपेण पालन नहीं हो सकता। आत्मा को, संसार बंधन से छुड़ाकर, मोक्ष दिलानेवाले चारित्र-धर्म का, ब्रह्मचर्य एक प्रधान और अवश्यक अंग है। ब्रह्मचर्य के विना, न तो अब-तक कोई मुक्त हुआ ही है, न हो ही सकता है। सिद्धात्माओं को, सिद्ध-गति प्राप्त करानेवाला यह ब्रह्मचर्य ही है। इस प्रकार, पार-लौकिक लाभ का ब्रह्मचर्य एक प्रधान साधन है।

ब्रह्मचर्य से पारलौकिक ही नहीं, किन्तु इह लौकिक लाभ

भी है। ऊपर बताया जा चुका है कि ब्रह्मचर्य से स्वास्थ्य अच्छा रहता है। स्वास्थ्य अच्छा रहने से ही इहलौकिक कार्य सुचारु रूप से सम्पादन हो सकते हैं।

ब्रह्मचर्य से इहलौकिक लाभ

सांसारिक-जीवन में, शरीर स्वस्थ, सुन्दर, बलवान, एवम् चिरायु रहने की, विद्या की, धन की, कर्त्तव्य-दृढ़ता की, और यशादि की अभिलाषा, स्वाभाविक ही रहती है। ब्रह्मचर्य से, ये सभी अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं। प्रसिद्ध जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि ने ब्रह्मचर्य की प्रशंसा करते हुए कहा है—

चिरायुषः सु संस्थानां दृढ़ संहननानराः ।
तेजस्विनो महावीर्या भवेयुर्ब्रह्मचर्यतः ॥

'ब्रह्मचर्य से शरीर चिरायु, सुन्दर, दृढ़कर्त्तव्य तेज-पूर्ण और पराक्रमी होता है।'

वैद्यक ग्रन्थों में भी कहा गया है—

ब्रह्मचर्य परं ज्ञानं ब्रह्मचर्य परं बलं ।
ब्रह्मचर्य मयोह्यात्मा ब्रह्मचर्येव तिष्ठति ॥

'ब्रह्मचर्य ही सबसे उत्तम ज्ञान है, अपरिमित बल है, यह आत्मा निश्चय रूप से ब्रह्मचर्यमय है और ब्रह्मचर्य से ही शरीर में ठहरा हुआ है।'

इन प्रमाणों से यह बात भलीभाँति सिद्ध हो जाती है, कि ब्रह्मचर्य से शरीर सुन्दर भी रहता है, बलवान भी रहता है, दीर्घजीवी भी होता है और यश-कीर्त्ति भी प्राप्त होती है। इसप्रकार ब्रह्मचर्य, इहलौकिक सुखों का भी साधन है। लौकिक वैभव-विद्या-धन, आदि—तभी प्राप्त होते हैं, जब शरीर स्वस्थ हो और उसमें

बल तथा साहस हो। ब्रह्मचर्य से शरीर स्वस्थ भी रहता है और शरीर में, बल तथा साहस भी रहता है।

विद्वानों का मत है, कि ब्रह्मचर्य के बिना, विद्या प्राप्त नहीं होती। विद्या-प्राप्ति के लिए, ब्रह्मचर्य का होना आवश्यक है। अथर्ववेद में कहा है—

ब्रह्मचर्येण विद्या।

'ब्रह्मचर्य से विद्या प्राप्त होती है।'

विदुरनीति में कहा है—

विद्यार्थं ब्रह्मचारी स्यात्।

'यदि विद्या के इच्छुक हो तो ब्रह्मचारी बनो।'

तात्पर्य यह कि ब्रह्मचर्य, लौकिक और लोकोत्तर, दोनों ही सुखों का प्रधान साधन है। इसकी पूर्णरूपेण प्रशंसा करना, समुद्र को हाथों के सहारे तैरने का साहस करना है।

ब्रह्मचर्य पर अपवाद

कुछ लोगों का कथन है, कि पूर्ण ब्रह्मचारी को मोक्ष या स्वर्ग, प्राप्त नहीं होता। क्योंकि, पूर्ण ब्रह्मचारी निःसन्तान रहते हैं और—

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गे नैवच नैवच।

सूक्ति

'पुत्रहीन की गति नहीं होती, और स्वर्ग तो कभी भी नहीं मिलता है।'

इस श्लोक से, पूर्ण-ब्रह्मचारी को स्वर्ग-मोक्ष-प्राप्ति से वंचित बताया जाता है, लेकिन इस श्लोक को खण्डन करनेवाला दूसरा यह प्रमाण भी है—

स्वर्गं गच्छान्ति ते सर्वे ये केचिद् ब्रह्मचारिणः।

सूक्ति।

'जितने भी ब्रह्मचारी हैं, वे सभी स्वर्ग को जाते हैं।'

जैन-शास्त्रानुसार, स्वर्ग-प्राप्ति कोई बड़ी बात नहीं है। बड़ी बात तो मोक्ष प्राप्त करने में है। ब्रह्मचर्य से संसार की सभी ऋद्धि मिलजावे—स्वर्गका राज्य भी प्राप्त हो जावे—तब भी यदि इसके द्वारा मोक्ष प्राप्त न हो सकता होता, तो जैन-शास्त्र इसे धर्मका अंग न मानते। क्योंकि जैन-शास्त्र उसी वस्तु को उपयोगी और महत्व की मानते हैं, जिसके द्वारा मोक्ष प्राप्त हो। लेकिन उक्त प्रमाण जिन ग्रन्थों के हैं, वे ग्रन्थ स्वर्ग को ही अन्तिम ध्येय मानते हैं। फिर भी ऊपर दिये हुये श्लोकों में से, पहला श्लोक दूसरे श्लोक से अप्रामाणिक ठहरता है।

अब्रह्मचर्य से हानि ।
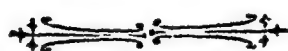
जहाय किंपाग फला मणोरमा,
रसेण वण्णेणय भुज्जमाणा ।
ते खुड्डए जीविय पच्चमाणा,
एओवया काम गुणा विवागे ॥

उत्तराध्ययन सूत्र ३२ वाँ० अ०

'जिस प्रकार, किंपाकफल वर्ण और रस से मनोरम और स्वादिष्ट होते हैं, परन्तु खाने पर मृत्यु का आलिंगन करना पड़ता है, उसी प्रकार काम-भोग भोगने में तः अच्छे लगते हैं, परन्तु परिणाम बहुत दुःखदायी होता है। इसलिए काम-भोग को त्यागो ।'

इन्द्रियों का दुर्विषय-लोलुप न होने और वीर्य का पूर्णरूपेण सुरक्षित रहने का नाम ही ब्रह्मचर्य है। इसके विपरीत-अर्थात् इन्द्रियों का दुर्विषयलोलुप होने, दुर्विषय-भोग में सुख मानने और वीर्य खण्डित करने-का नाम अब्रह्मचर्य है। अब्रह्मचर्य का दूसरा नाम मैथुन भी है, लेकिन मैथुन में मैथुनाङ्ग भी शामिल हैं। ग्रन्थकारों ने, ब्रह्मचर्य का रूप बताने के लिए मैथुन की व्याख्या इस प्रकार की है:—

स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्ति रेवच ॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्य्य मेतदेवाष्टलक्षणम् ॥

दक्ष-संहिता ।

'स्मरण, कीर्तन, केलि, अवलोकन, गुप्त-भाषण, सङ्कल्प, अध्यवसाय और क्रिया-निवृत्ति, ये मैथुन के आठ अङ्ग हैं । इन लक्षणों से परे रहने का नाम ब्रह्मचर्य है ।'

देखी या सुनी हुई स्त्रियों को याद करना, 'स्मरण' नामक मैथुन का पहला अंग है । स्त्रियों की प्रशंसा करना-उनके विषय में बातचीत करना—'कीर्त्तन' मैथुन का दूसरा अंग है । स्त्रियों के साथ किसी प्रकार के खेल खेलना 'केलि' मैथुन का तीसरा अंग है । काम-दृष्टि से किसी स्त्री को देखना 'प्रेक्षण' मैथुन का चौथा अंग है । स्त्रियों से छिप कर बातें करना 'गुह्य भाषण,' पाँचवां अंग है । स्त्री-सम्बन्धी भोग भोगने का विचार लाना 'संकल्प' मैथुन का छठा अंग है । स्त्री-प्राप्ति की चेष्टा करना, 'अध्यवसाय' नाम का सातवां और स्त्री-सम्भोग द्वारा वीर्य नष्ट करना, 'क्रियानिवृत्ति' मैथुन का आठवाँ अंग है ।

ब्रह्मचर्य के विरोधी अब्रह्मचर्य-मैथुन-के उक्त आठ अंगों में से जिस-जिस अंग की पूर्त्ति होती जाती है, ब्रह्मचर्य, उतने ही उतने अंश में नष्ट होता जाता है और मैथुन के आठों अंग की पूर्त्ति होने पर, ब्रह्मचर्य, पूर्ण रूपेण नष्ट हो जाता है । मैथुन और ब्रह्मचर्य, परस्पर विरोधी हैं, इसलिए जहाँ एक है, वहाँ दूसरा नहीं ठहर पाता ।

मैथुन-और मैथुनाङ्ग-का नाम ही अब्रह्मचर्य है। वीर्य भी, मैथुन से ही नष्ट होता है। इन्द्रियों का दुर्विषय-लोलुप होना ही मैथुन है, और मैथुन ही इन्द्रियों की दुर्विषय-लोलुपता है।

मैथुन के किसी भी एक अंग के सेवन से-अर्थात् आंशिक रूप में ब्रह्मचर्य खण्डित होने से-मैथुन का सर्वाङ्ग में सेवन और ब्रह्मचर्य का नाश होना स्वाभाविक है।

आंशिक मैथुन-सेवन से हानि

क्योंकि, मैथुन के किसी भी एक अंग के सेवन से एक न एक इन्द्रिय दुर्विषय-लोलुप बनेगी ही, और किसी भी एक इन्द्रिय के दुर्विषय-लोलुप बन जाने पर सभी इन्द्रियें दुर्विषय-लोलुप बन जाती हैं। उदाहरण के लिए, यदि कान स्त्री-शब्द में सुख मानते हैं, तो नाक, उनके शरीर की गंध में, जीभ उनसे संभाषण करने में, नेत्र उनका रूप देखने में और त्वचा, उनका स्पर्श करने में सुख मानेगी। क्योंकि—

इन्द्रियाणां तु सर्वेषाम् यद्येकंक्षरतीन्द्रियम्।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पादादिवोदकम्॥

मनुस्मृति अ० २

'जिस प्रकार, जल की मशक में एक भी छेद हो जाने पर फिर उस में जल नहीं ठहरता, उसी प्रकार, सब इन्द्रियों में से, एक भी इन्द्रिय के विषय-लोलुप बनने पर, बुद्धि नष्ट हो जाती है।'

बुद्धि के नष्ट होने पर, इन्द्रिय-संयम कहाँ? स्वभावतः विषय-प्रिय इन्द्रियाँ फिर तो दुर्विषयों की ही ओर दौड़ती हैं। बुद्धि के नष्ट हो जाने से, इन्द्रियें निरंकुश हो जाती हैं और फिर आत्मा को दिन-प्रतिदिन, पतन की ही ओर अग्रसर करती

हैं। नष्ट-बुद्धि, इन्द्रियों के वश होकर, यह सिद्धान्त मानने लगता है:—

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्पर संभूतं किमन्यत्काम हेतुकम् ॥

गी० अ० १६

'जगत्, असत्य, निराधार और अनीश्वर है । यह यों ही बना है। काम के सिवा इस संसार के बनने का दूसरा क्या हेतु हो सकता है?'

इस सिद्धान्त को मान कर फिर—

ईहन्ते काम भोगार्थमन्यायेन नार्थ संचयान् ।

गीता अध्याय १६

'केवल काम-भोग के लिए ही अन्याय से धन बटोरने लगते हैं।'

तात्पर्य यह, कि मैथुन के किसी एक भी अंग के सेवन से अर्थात् एक भी इन्द्रिय की दुर्विषय-लोलुपता से ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है, और अब्रह्मचर्य, पूर्णरूपेण अपना आधिपत्य जमा लेता है।

संक्षिप्त में, अब्रह्मचर्य से तात्पर्य है—दुर्विषय-भोग, मैथुन, या वीर्य का खण्डित करना। जैन-शास्त्रों ने ही नहीं, किन्तु

अब्रह्मचर्य की निन्दा और उससे हानि।

अन्य ग्रन्थकारों ने भी इस अब्रह्मचर्य-की लौकिक और लोकोत्तर-दोनों ही दृष्टि से, बड़ी निन्दा की है। प्रश्नव्याकरणसूत्र में अब्रह्मचर्य को चौथा अधर्म द्वार मानते हुए कहा है—

जंबू ! अबंभंचउत्थं सदेव मणुया सुरस्स लोगस्स पत्थणिज्जं पंक पणग पास जाल भूयंत्थी ... ...

'हे जम्बू ! चौथा अधर्मद्वार, अब्रह्मचर्य है। देव, असुर, मनुष्य, लोकपति, आदि इस अब्रह्मचर्य रूपी की कीचड़ की दलदल में फंसे हुए हैं। देव-असुर, मनुष्यादि को यह जाल के समान फँसानेवाला है। पुरुषों के लिए, यह नपुंसकत्व का कारण है। तप, संयम और ब्रह्मचर्य के लिए विघ्न रूप है, अर्थात् इन्हें नाश करनेवाला है। विषय कषाय आदि प्रमादों का मूल है। इन्द्रियों के समीप जो कायर तथा कापुरुष हैं, उन लोगों द्वारा सेवित एवं सज्जनों द्वारा निन्दित-वर्ज्य है। तीनों लोक में अप्रतिष्ठित एवं जरा, मृत्यु, रोग शोक की वृद्धि करने वाला है। वध, बन्धन, आघात तथा दर्शन-मोहनीय और चारित्र-मोहनीय कर्म का हेतु है। प्राणियों को इसका परिचय दीर्घकाल से है, इसलिए इसका अन्त करना कठिन है।'

प्रश्नव्याकरण सूत्र में, आगे अब्रह्मचर्य के तीस नाम बताते हुए यह बताया गया है, कि बड़ी-बड़ी ऋद्धिवाले चक्रवर्ती तथा माण्डलिक राजाओं की भी इससे अतृप्ति रही है। इस की निन्दा करते हुए प्रश्नव्याकरणसूत्र में आगे कहा है—

मेहुणसन्नप गिद्धाय मोह भरिया सत्थेहिं हणंति एक्क मेक्कं
विसय विसे उदारएहिं अवरे पर दारेहिं हिंसति ... ...

'मैथुन में गृद्ध ब्रह्मचर्य के अज्ञान से भरे हुये लोग, परस्पर एक दूसरे की घात करते हैं। विष देकर मार डालते हैं। यदि पर-दारा हुई तो उस स्त्री का पति जारपति की घात करता है। इस प्रकार अब्रह्मचर्य, मृत्यु का कारण है। अब्रह्मचर्य से धन और स्वजन का नाश होता है। एवं परदारा में गृद्ध स्त्री-मोह से परिपूर्ण घोड़े, हाथी, बैल, भैंसे, मृग आदि पशु परस्पर लड़कर मर जाते हैं और अपनी सन्तान तक की घात कर डालते हैं। इसी प्रकार पक्षी और मनुष्य भी परस्पर युद्ध करते हैं। अब्रह्मचर्य के कारण मित्रों में भी वैर-भाव उत्पन्न हो जाता है। अब्रह्मचर्य

से सिद्धान्त द्वारा प्ररूपित चारित्र रूपी मूलगुण का भेदन हो जाता है। श्रुतचारित्रधर्म में रत जीव भी स्त्री-संग से क्षणमात्र में भ्रष्ट बन जाते हैं। सम्यक्त्वी और सुव्रती भी स्त्री-संग से अपयश तथा अकीर्त्ति को प्राप्त होते हैं। अब्रह्मचर्य से शरीर रोगी बना रहता है, और अन्त में शीघ्र ही मृत्यु के मुख में पड़ना पड़ता है। अब्रह्मचर्य से परस्त्री-गमन के कारण कितने ही जीव बंधन में पड़ते हैं और मारे जाते हैं। अब्रह्मचर्य के मोह से पराभव को पाये हुये जीव इस प्रकार दुर्गति के अधिकारी बनते हैं।'

प्रश्नव्याकरणसूत्र में आगे यह भी बताया गया है, कि अब्रह्मचर्य के कारण स्त्रियों के लिए कैसे-कैसे महान् संग्राम हुए हैं। स्त्रियों के लिए होने वाले संग्रामों का वर्णन करने के पश्चात् प्रश्नव्याकरणसूत्र में लिखा है—

इहलोएतावनट्ठा परलोएयनट्ठा महया मोह तिमिसंधयारे घोरे तस थावर सुहुम बादरेसुय पज्जत्तम पज्जत्तक साहारण सरीर पत्तेय ... ...

'इन्द्रियों का विषय-भोग रूप मैथुन, इस लोक में बन्धन-कर्त्ता और परलोक में अनिष्टकारी है। महामोह रूप अंधकार का स्थान है। त्रस स्थावर, सूक्ष्म बादर पर्याप्त-अपर्याप्त आदि पर्यायों से चतुर्गति रूप संसार में विशेष समय तक और बारम्बार परिभ्रमण करानेवाले मोहनीय-कर्म का वर्द्धक है।'

एसोसो अबंभस्स फल विवागो इह लोइयो पर लोइयो अप्प सुहो बहु दुक्खो महब्भयओ बहुरयप्प गाढो दारूणो कक्कसो असाओ वास सहस्सेहिं मुचंतीनय अवेदयिता अत्थिहु मोक्खोंति।

'इस प्रकार अब्रह्मचर्य का फल इस लोक तथा परलोक में अल्प सुख और महान् दुःख है। अब्रह्मचर्य महा भय का स्थान, कर्मरूपी रज से गाढ़ी तरह घिरा हुआ एवं दारुण कर्कश और बिना भोगे न छूटने वाले कर्मों को बाँधने वाला है।'

गीता में अब्रह्मचर्य की निम्न प्रकार से निन्दा की है—

कामएष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः ।
महाशनो महा पाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ॥
धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेना वृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्य वैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठान मुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥

अध्याय ३

'मनुष्य को पाप के रास्ते ले जानेवाले रजोगुण से उत्पन्न काम और क्रोध ही हैं। ये भुखमरे या पेटू महापापी और शत्रु हैं। जिस प्रकार 'आग' धुएँ से ढकी रहती है, काँच मैल से धुंधला दीखता है और गर्भ का बालक झिल्ली से ढका रहता है, उसी प्रकार सारा संसार काम से ढका हुआ है। यानी जिसमें काम न हो—जो काम से परे हो—वह संसार से भी परे है। हे अर्जुन! कभी तृप्त न होने वाली यह काम रूपी आग आत्मा की सदा को वैरिन है। ज्ञानियों के ज्ञान को भी यह ढाँक देती है। इस काम के ठहरने की जगह, इन्द्रिय, मन और बुद्धि है। यह इन्हीं के सहारे ज्ञान को ढाँक कर मनुष्य को मोहित करता है।'

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

गीता अ० १६

'काम, क्रोध और लोभ, ये नरक के द्वार और आत्मा का नाश करने-वाले हैं। इसलिए इन तीनों को त्याग देना चाहिए।'

इस प्रकार, अब्रह्मचर्य की, सब ने निन्दा की है। परलोक-सम्बन्धी जो हानियें इससे होती हैं, उनका वर्णन तो किया ही गया है, लेकिन इसलोक में भी इससे अनेक हानियें हैं। इससे होनेवाली समस्त हानियों का वर्णन करना कठिन है।

अब्रह्मचर्य से हिंसा।

अब्रह्मचर्य-मैथुन-से, हिंसा का महान्-पाप भी होता है। भगवती सूत्र में; गौतम स्वामी के प्रश्न करने पर, भगवान ने फर्माया है कि 'जिस प्रकार रुई से भरी हुई नली में, तप्त लोहे की सलाई डालने से रुई का नाश होता है, उसी प्रकार, कामाचार सेवन करनेवाला, स्त्री-योनि के जन्तुओं का नाश करता है। ये जन्तु पंचेन्द्रिय हैं, और उनकी संख्या अधिक-से-अधिक नवलाख है। इन—नवलाख—जीवों के सिवा, संमूर्छिम जीवों की तो गिन्ती ही नहीं है।' इस प्रकार, एक बार के मैथुन से अनेक जीवों की हिंसा का पाप होता है।

स्त्री-योनि में जीव होते हैं इस बात को दूसरे लोग भी मानते हैं। वात्सायन कामसूत्र का टीकाकार और रतिरहस्य का कर्त्ता भी स्त्री-योनि में जीव होना स्वीकार करता है। जब स्त्री-योनि में जीव हैं, तो मैथुन से उनका नाश होना और हिंसा

का पाप लगना, स्वाभाविक है। इसलिए अहिंसाव्रत की रक्षा की दृष्टि से भी अब्रह्मचर्य त्याज्य है।

ब्रह्मचर्य-व्रत।

विमरत बुधा योपित्संगात्सुखात क्षण भंगुरात्
कुरुत करुणा मैत्री प्रज्ञा वधूजन संगमम्।
न खलु नरके हाराक्रान्तं घनस्तन मण्डलं
शरण मथवा श्रोणी बिम्बं रणन्मणि मेखलम्॥

भर्तृहरि

'हे बुद्धिमानो! क्षणिक और नाशवान स्त्री-संग के सुख को छोड़कर, मैत्री, करुणा, और प्रज्ञा (ज्ञान) रूपी स्त्री का साथ करो। नरक में, जब ताड़ना होगी, तब स्त्रियों के हार-भूषित स्तनमण्डल और घुँघरूदार करधनी से शोभित कमर, सहायता न करेंगी।'

ब्रह्मचर्य व्रत का अर्थ।

अब्रह्मचर्य से निवृत्त कर, ब्रह्मचर्य पालन करने की प्रतिज्ञा करने का नाम 'ब्रह्मचर्य-व्रत' है। इस प्रकार की प्रतिज्ञा पालन करने वाले को, 'ब्रह्मचारी' कहते हैं।

ब्रह्मचर्य को व्रत रूप क्यों स्वीकारना चाहिए?

कभी कोई कहे कि 'प्रतिज्ञा रूप व्रत स्वीकार किये बिना ही, यदि ब्रह्मचर्य का पालन किया जावे, तो क्या हर्ज है? यदि कोई हानि नहीं है, तो फिर ब्रह्मचर्य पालन की प्रतिज्ञा करने-यानी व्रत धारण करने-की क्या आवश्यकता है?' इसका उत्तर यह है, कि संकल्प-हीन कार्यों की पूर्ति में सन्देह रहता है॥ संकल्प, यानी

व्रत या प्रतिज्ञा कर लेने पर, कार्य में होनेवाली बाधाओं को सहने की शक्ति होती है, मन में दृढ़ता रहती है और 'प्रतिज्ञा-भ्रष्ट न हो जाऊँ!' इस बात का भय रहता है। इसके सिवा व्रत रूप धारण किये बिना ब्रह्मचर्य पालन से, परलोक सम्बन्धी जो लाभ होना चाहिए, वह लाभ भी नहीं होता। जैन-शास्त्रों में तो इस बात का प्रतिपादन है ही, लेकिन अन्य ग्रन्थों में भी यही बात कही गई है। जैसे—

संकल्पेन विना राजन् यत्किंचित् कुरुतेनरः।
फलस्याप्यल्पकं तस्य धर्मस्यार्ध क्षयं भवेत ॥

पद्म पुराण।

'हे राजन्! संकल्प के बिना जो कुछ किया जाता है, उसका फल बहुत थोड़ा होता है और उस कार्य के धर्म का आधा भाग नष्ट हो जाता है।'

किसी भी शुभ कार्य को करने के लिए, संकल्प का होना आवश्यक है और परलोक के लिये हितकारी नियमों के पालन का संकल्प ही व्रत कहलाता है। यद्यपि, व्रत रूप धारण किये बिना भी, ब्रह्मचर्य का पालन करना बुरा नहीं है—अच्छा ही है—लेकिन, ब्रह्मचर्य-पालन से, पारलौकिक जो लाभ प्राप्त होना चाहिये, वह लाभ ब्रह्मचर्य को व्रत रूप स्वीकार किये बिना, पूर्णतया प्राप्त नहीं होता। इन सब बातों को दृष्टि में रखकर, ब्रह्मचर्य को, व्रत रूप स्वीकार करना उचित है! ब्रह्मचर्य को व्रत-रूप स्वीकार करने से, किसी प्रकार की हानि नहीं है, हाँ, लाभ अवश्य हैं, जो ऊपर बताये जा चुके हैं।

भगवान महावीर से पूर्व, ब्रह्मचर्य नाम का व्रत अलग न:

था। उस समय अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ये चारही व्रत थे। चार व्रत होने पर भी, ब्रह्मचर्य का पालन तो होता था, लेकिन ब्रह्मचर्य व्रत, अपरिग्रह व्रत में ही माना जाता था और परिग्रह के त्याग में, अब्रह्मचर्य का भी त्याग समझा जाता था। यद्यपि, अपरिग्रह-व्रत में ब्रह्मचर्य-व्रत का भी समावेश हो जाता है और परिग्रह के त्याग में, अब्रह्मचर्य का भी त्याग हो जाता है, परन्तु भगवान महावीर ने, अपने समय के एवं भविष्य के वक्र-जड़ मनुष्यों को दृष्टि में रखकर, ब्रह्मचर्य व्रत का, अलग ही उपदेश दिया। भगवान पार्श्वनाथ तक चार ही व्रत थे, और भगवान महावीर ने पाँच व्रत का उपदेश दिया, इस बात को लेकर-भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के-मुनि श्री केशीजी और भगवान महावीर के शिष्य-श्री गौतम स्वामी में, चर्चा भी हुई; जिसका विस्तृत वर्णन, श्री उत्तराध्ययन सूत्र के २३ वें अध्ययन में है।

ब्रह्मचर्य व्रत, अपरिग्रह व्रत से अलग क्यों है ?

शास्त्रकारों ने, सुविधा की दृष्टि से, ब्रह्मचर्य-व्रत के दो भेद कर दिये हैं! एक सर्वविरति-ब्रह्मचर्य-व्रत और दूसरा देशविरति-ब्रह्मचर्य-व्रत। सर्वविरति-ब्रह्मचर्य-व्रत उसे कहते हैं, जिसमें, जीवन भर के लिये मैथुन से निवृत्ति होने, वीर्य अक्षत रखने और सभी प्रकार के काम भोग न भोगने की प्रतिज्ञा की जावे। इस व्रत को स्वीकार करनेवाला, 'सर्वविरति-ब्रह्मचारी, कहलाता है। ऐसा ब्रह्मचारी मन, वचन और काय से, वैक्रिय तथा औदारिक शरीर सम्बन्धी

ब्रह्मचर्य व्रत के दो भेद

काम-भोगों को, न भोगता है, न भोगवाता है, न भोगनेवाले को अच्छा ही समझता है। सर्वविरति-ब्रह्मचारी, ऐसे अठारह प्रकार के काम-भोगों को त्यागकर, ब्रह्मचर्य का पूर्ण रीति से पालन करने की प्रतिज्ञा करता है। सर्वविरति-ब्रह्मचर्य का, अन्य ग्रन्थकारों ने, नैष्ठिक-ब्रह्मचर्य नाम दिया है।

देशविरति-ब्रह्मचर्य-व्रत उसे कहते हैं, जिसमें स्व-स्त्री की मर्यादा रखी जावे। इस स्थान पर, सर्वविरति-ब्रह्मचर्य-व्रत का ही वर्णन किया जाता है, देशविरति ब्रह्मचर्य-व्रत का वर्णन आगे किया गया है।

सर्वविरति-ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कौन कर सकते हैं, इसके लिये एक आचार्य कहते हैं—

शक्यं ब्रह्म व्रतं घोरं शूरैश्च नतु कातरैः ।
करि पर्याण मुद्वोढुं करिभिर्नतु रासभैः ॥

'ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना, शूरों के लिए ही शक्य है; कायरों के लिए नहीं; जैसे कि हाथी का पलान, हाथी ही उठा सकता है, गधा नहीं उठा सकता।'

सर्वविरति ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कौन करसकता है?

सर्वविरति-ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन, संसार-त्यागी साधु ही कर सकते हैं, दूसरा नहीं कर सकता। संसार-व्यवहार में रहनेवाले सभी मनुष्य, एक दम से संसार-व्यवहार नहीं छोड़ सकते; इसलिये संसार-व्यवहार में रहने वालों के लिये, देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत बतलाया गया है। इस प्रकार गृहत्यागियों के लिये सर्वविरति-ब्रह्मचर्य-व्रत है और गृहस्थियों के लिये देशविरति-ब्रह्मचर्य-व्रत।

इन्द्रियें, पाप से नहीं हैं मिली, किन्तु पुण्य से मिली हैं। पुण्य से मिली हुई इन्द्रियों को, पुण्य की ओर लगाना उचित है, न कि पाप की ओर। जब इन पुण्य से मिली हुई इन्द्रियों द्वारा, धर्म का लाभ लिया जा सकता है, तब इनसे पाप क्यों किया जावे? इन्द्रियों द्वारा, काम-भोग भोगना, पुण्य से प्राप्त इन्द्रियों को पाप में प्रवृत्त करना है। इन्द्रियों की सार्थकता तभी है, इनके मिलने का लाभ तभी है, जब इन्हें असंयम में न लगाया जाकर, संयम में रक्खा जावे। इनके द्वारा दुर्विषय भोगना—इन्द्रियों का दुर्विषय में लिप्त होना—उसी प्रकार नाशकारी है, जिस प्रकार, पतंग के लिए दीपक की लौ से मोह करना नाशकारी है। पतंग, केवल आँखों के विषय-रूप-पर मोहित होने से नष्ट हो जाता है, तो जिनकी पाँचों इन्द्रियें दुर्विषय-लोलुप हों, वे नष्ट क्यों न होंगे? इन्द्रियों को दुर्विषय भोग में लगाने से—दुर्विषय-लोलुप बनाने से—नाश, अवश्यम्भावी है। इसलिये—काम, भोग के दुष्परिणामों से बचने के वास्ते—सर्वविरति ब्रह्मचर्य व्रत को स्वीकार करना—और पालन करना-उचित है।

ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकारने से लाभ

मोक्ष की आराधना के लिए, चारित्र धर्म के अन्तर्गत, भगवान् ने जिन पाँच व्रतों को बताया है, उनमें से यह सर्वविरति-ब्रह्मचर्य, चौथा व्रत है। मोक्ष-प्राप्ति के लिये, ब्रह्मचर्य व्रत को स्वीकार करना—और पालन करना—आवश्यक है। ब्रह्मचर्य-व्रत के बिना अन्य व्रत, मोक्ष के लिए, पूर्णरूपेण सार्थक नहीं होते, न ब्रह्मचर्य के अभाव में अन्यव्रत, भली प्रकार आराधे ही जा सकते हैं। ब्रह्मचर्यव्रत, मोक्ष के लिए कैसा उप-

योगी है, यह बताते हुए एक आचार्य कहते हैं—

एस धम्मे धुए नियए सासए जिण देसिए।
सिज्झा सिज्झंति झाणेणं सिज्झिसंति तहापरे॥

'यह ब्रह्मचर्य-धर्म, ध्रु, नियत, अविनाशी और जिनदेव का कहा हुआ है। इसी ब्रह्मचर्य—धर्म से, सिद्ध हुए हैं और सिद्ध होंगे।'

ब्रह्मचर्य-व्रत की प्रशंसा सर्वविरति ब्रह्मचर्य व्रत की प्रशंसा करते हुए, एक आचार्य कहते हैं—

व्रतानां ब्रह्मचर्यं हि निर्दिष्टं गुरुकं व्रतम्।
तज्जन्य पुण्य सम्भार संयोगाद् गुरुरुच्यते॥

'व्रतों में ब्रह्मचर्य ही बड़ा व्रत है; इसी व्रत के पुण्य-संयोग से गुरु कहे जाते हैं।'

गीता में कहा है—

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

अध्याय २ रा

'जिस प्रकार कछुआ, अपने सब अंगों को सिकोड़ लेता है, उसी प्रकार, विषयों को ओर से इन्द्रियों को सिकोड़ लेने वाला ही स्थिर-बुद्धि है।'

महाभारत में कहा है—

सत्ये रतानां सततं दान्तानां मूर्ध्व-रेत साम।
ब्रह्मचर्यं दहेद्राजन्! सर्वं पापान्य पासितम्॥

शान्ति पर्व।

'हे राजन्! सत्य से प्रेम करनेवाले ब्रह्मचारी का ब्रह्मचर्य, समस्त पापों को नष्ट करने वाला है।'

ब्रह्मचर्य की प्रशंसा में, विद्वान् लोग कहते हैं—

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्य लाभो भवत्यपि।
सुरत्वं मानवोयाति चान्तेयाति परांगतिम् ॥ १ ॥
ब्रह्मचर्य पालनीयं देवानामपि दुर्लभम्।
वीर्ये सुरक्षिते यान्ति सर्व लोकार्थ सिद्धयः ॥ २ ॥

सूक्ति

'ब्रह्मचर्य का पालन करने से, वीर्य का लाभ होता है, मनुष्य भी, देवता के समान दिव्य हो जाता है, और ब्रह्मचर्य की साधना पूरी होने पर परमगति भी मिलती है ॥ १ ॥ ब्रह्मचर्य, देवताओं के लिये भी दुर्लभ है, इसलिये इसका पालन करना उचित है; वीर्य को सुरक्षित रखने से, सब लोकों का अर्थ सिद्ध हो जाता है ॥ २ ॥'

इस प्रकार, सर्वविरति ब्रह्मचर्य की, सब शास्त्र और ग्रन्थों ने प्रशंसा की है। यति-धर्म का पूर्णतया पालन तभी हो सकता है, जब, इस सर्वविरति ब्रह्मचर्य व्रत को स्वीकार करके, पूर्ण-रीति से पाला जावे। इस ब्रह्मचर्य व्रत के बिना, अन्य व्रतों को स्वीकार करना, तथा उनका पालन करना भी, मोक्ष के लिये पर्याप्त नहीं है। अतः मोक्षेच्छुकों को, अन्य व्रतों के साथ इस व्रत को स्वीकार करना और पालन करना, आवश्यक है।
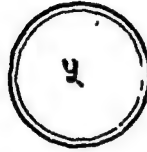
व्रत-रक्षा के उपाय ।

जेण सुद्धचरिएणं भवति सुबंभणो, सुसमणो, सुसाहू, स इसी, स मुणी, स संजए, स एव भिक्खू जो सुद्धं चरति बंभचेरं ।

प्रश्न व्याकरण सूत्र ।

'ब्रह्मचर्य के शुद्धाचरण से ही, उत्तम ब्राह्मण, उत्तम श्रमण, और उत्तम साधु होता है। शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालने वाला ही; ऋषि, मुनि, संयमी और भिक्षु है।'

शास्त्रों में, ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा के, प्रधानतः दो उपाय बताये गये हैं। एक क्रिया-मार्ग और दूसरा ज्ञान-मार्ग। क्रिया-

ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा के दो प्रधान उपाय।

मार्ग, ब्रह्मचर्य के विरोधी संस्कारों को रोकता है और इस प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा करता है। लेकिन इस मार्ग से, अब्रह्मचर्य के संस्कार निर्मूल नहीं होते। ज्ञान-मार्ग, अब्रह्मचर्य के संस्कारों को, निर्मूल कर देता है। फिर ब्रह्मचारी को, ब्रह्मचर्य-पूर्ण जीवन स्वाभाविक एवं सरल और अब्रह्मचर्य पूर्ण जीवन अस्वाभाविक एवं कठिन प्रतीत होता है। ज्ञान-मार्ग द्वारा

प्राप्त रक्षण, स्वरूप-चिन्तन या आत्मविवेक से उत्पन्न हुआ होता है, इसलिये एकान्तिक और आत्यन्तिक है; कभी नाश नहीं होता। लेकिन क्रिया-मार्ग द्वारा प्राप्त रक्षण, एकान्तिक या आत्यन्तिक नहीं है। क्रिया में किंचित भी ढिलाई होने से, अब्रह्मचर्य के सूक्ष्म-संस्कारों का व्यरूप होना संभव है। यद्यपि इन दोनों उपायों में से उत्तम उपाय, ज्ञान-मार्ग है, फिर भी जिस ब्रह्मचारी ने, ज्ञान मार्ग को पूरी तरह अपना लिया है, उसको क्रियामार्ग की उपेक्षा करना उचित नहीं है। क्योंकि, क्रिया-मार्ग को त्याग देने से, व्यवहार में भी धोखा हो सकता है, ब्रह्मचारी अब्रह्मचारी की पहचान भी नहीं रहती और क्रिया-शून्य ज्ञान, पूर्णतया लाभप्रद भी नहीं है।

क्रिया-मार्ग से ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा।

क्रिया-मार्ग में, बाह्य नियमों का समावेश है। क्रिया-मार्ग द्वारा, ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा के लिये, प्रश्नव्याकरण सूत्र में, पाँच भावनाएँ बताई गई हैं; जो इसप्रकार हैं—

१—केवल स्त्रियों से सम्बन्ध रखनेवाली कथाओं को, स्त्रियों के सन्मुख या अन्यत्र न करे।

२—स्त्रियों की मनोहर इन्द्रियाँ न देखे।

३—स्त्रियों के रूप को न देखे।

४—काम भोग को बढ़ाने वाली वस्तुओं को न देखे, न कहे, न स्मरण करे।

५—कामोत्तेजक पदार्थ न खावे-पीवे।

इसी प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा के लिये, भगवान ने, उत्तराध्ययन सूत्र में दस समाधिस्थान बताये हैं, जो संक्षिप्त में इस प्रकार हैं—

१—वैक्रिय और औदारिक शरीर-धारिणी-स्त्री, पशु और नपुंसक के संसर्गवाले आसन और निवास स्थान आदि का उपयोग नहीं करना।

२—अकेली स्त्री से बात-चीत न करना, केवल अकेली स्त्री को कथा-वार्ता, व्याख्यान आदि न सुनाना, और स्त्री-कथा न करनी। यानी केवल स्त्री के रूप-वेश आदि का वर्णन न करना।

३—स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठना और जिस आसन पर स्त्री बैठी हो, उस आसन पर, स्त्री के उठने से दो घड़ी पश्चात् तक न बैठना।

४—स्त्रियों की मनोहर आँख, नाक आदि का तथा दूसरे अंगोपांग का-अवलोकन न करना, न उनका चिंतन करना।

५—स्त्रियों के रति-प्रसंग समय के शब्द, रतिकलह के शब्द, गीत की ध्वनि, हँसी की किलकिलाहट, क्रीड़ा के शब्द, और विरह-रुदन को पर्दे के पीछे से या दीवाल की आड़ से भी न सुनना।

६—पूर्व में अनुभव की हुई, आचरण की हुई या सुनी हुई रति-क्रीड़ा काम-क्रीड़ा आदि का स्मरण न करना।

७—पौष्टिक खाद्य एवं पेय पदार्थों का उपयोग न करना।

८—सादा भोजन आदि भी प्रमाण से अधिक न खाना-पीना।

९—शृङ्गार-स्नान, विलेपन, धूप, माला, विभूषण और केश-रचना आदि न करना।

१०—कामोत्तेजक शब्द, रूप, रस, गंध, और स्पर्श से बचना।

सर्वविरति ब्रह्मचारी को, ऊपर कही हुई भावनाओं एवं

समाधिस्थान के नियमों का पालन करना आवश्यक है। ऐसा न करने से, सर्वविरति ब्रह्मचर्य व्रत में अतिचार लगता है और अतिचार लगने से व्रत दूषित हो जाता है।

यहाँ प्रश्न होता है, कि आँखों के सामने आये हुए रूप को या कान में पड़े हुए शब्द को देखने-सुनने से, किस प्रकार बचा जा सकता है ? क्या आँख-कान आदि को बन्द रखना चाहिए ? इसका उत्तर यह है कि सामने आये हुए रूप को न देखना, या कान में पड़े हुए शब्द को न सुनना, वास्तव में अशक्य है; परन्तु इसके लिये, आँख-कान, आदि बन्द रखने की जरूरत नहीं है। किन्तु ऐसे समय में, ब्रह्मचारी को, अपने में राग-द्वेष न होने देना चाहिये और वस्तुस्वरूप का चिन्तन करना चाहिए।

मनः संयम।

सर्वविरति ब्रह्मचर्य व्रत का, पूर्णतया पालन तभी माना जाता है, जब शरीर के साथ ही, मन और वचन पर भी संयम रखा जावे। केवल शरीर से ही अब्रह्मचर्य का सेवन न करना, सर्वविरति-ब्रह्मचर्य नहीं है, किन्तु मन वचन और काय इन, तीनों से अब्रह्मचर्य का सेवन, न करना चाहिए। बल्कि, शरीर की अपेक्षा मन पर अधिक संयम रखने की आवश्यकता है। क्योंकि—

मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः।

'मन ही मनुष्य के लिये पाप-बंध या मोक्ष का कारण है।'

बन्धाय विषयासक्तं मुक्तये निर्विषयं मनः।

सूक्ति।

'विषयासक्त मन, पाप-बन्ध का कारण है और विशुद्ध मन, मोक्ष का कारण है।'

इन्द्रियें, दुर्विषयों में, मन को साथ लेकर ही प्रवृत्त होती हैं। यदि मन, इन्द्रियों का साथ न दे, तो इन्द्रियें—चाहने पर भी दुर्विषयों में प्रवृत्त नहीं हो सकतीं। कदाचित इन्द्रियों को दुर्विषयों में प्रवृत्त न होने दे, तब भी यदि मन से दुर्विषयों का चिन्तन करता है, तो वह अब्रह्मचर्य का पाप उसी प्रकार बाँधता है, जिस प्रकार, (शास्त्र की कथा के अनुसार) तंदुलमच्छ,—प्रकट में हिंसा न करके भी—हिंसा का पाप बाँधता है। गीता में कहा है—

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥

अध्याय ३ रा

'कर्मेन्द्रियों को रोककर, मन से विषयों का चिन्तन करनेवाला मूढ़ात्मा, मिथ्याचारी (पाखण्डी) कहलाता है।'

आत्मा के विनाश का कारण बताते हुए, गीता में कहा है—

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूप जायते ।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥

क्रोधाद्भवति संमोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः ।
स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

अध्याय २ रा

'विषयों का ध्यान करते रहने पर, विषयों से स्नेह होजाता है और फिर, उनके पाने की इच्छा-काम—की उत्पत्ति होती है; इस काम से ही क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अज्ञान उत्पन्न होता है, अज्ञान से स्मृति नष्ट होती है, स्मृति नष्ट होने से, बुद्धि भ्रष्ट होती है और बुद्धि भ्रष्ट होने पर, सत्यानाश हो जाता है।'

इस प्रकार, आत्मा के पतन का कारण, मन में, विषयों का ध्यान करना—विषयों का चिन्तन करना—ही ठहरता है। इसलिये ब्रह्मचारी को, मन पर संयम रखने की विशेष आवश्यकता है।

मनको किसी भी समय कार्य से खाली रखना, ब्रह्मचर्य-व्रत को जोखम में डालना है। मन को जब भी कोई कार्य न होगा, वह तभी बुरे विचार करने लगेगा। बुरे विचार ही, पाप का कारण है। संसार में कहावत है कि 'वश में किये हुए भूत, को जब कोई काम नहीं बताया जाता तब वह भूत, उस वश करनेवाले के रक्त-माँस को ही खा जाता है।' ठीक इसी प्रकार, जब मन को कोई काम नहीं रहता, तब वह हृदय के, सद्विचारों का—मनुष्य के गुणों का—भक्षण करने लगता है। इसलिये मन को प्रत्येक समय, किसी न किसी सद्कार्य में लगाये रखना उचित है।

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये, अधिक भोजन करना वर्ज्य है।

भोजन-संयम।

जीवन के लिये जितना भोजन आवश्यक है उससे किंचित भी अधिक भोजन, ब्रह्मचारी को न करना चाहिये। अधिक भोजन से, [illegible]त्पन्न होता है, जो ब्रह्मचर्य का नाशक है।

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये, थोड़ा भोजन ही अच्छा है। विद्वानों का कथन है—

स्वल्पाहारः सुखावहः ।

'थोड़ा भोजन, सुखप्रद है।'

इस कथन का उल्टा यह हुआ, कि अधिक भोजन दुःख प्रद है। अधिक भोजन, केवल ब्रह्मचर्य के ही लिये नहीं, किन्तु प्रत्येक दृष्टि से हानिप्रद है। चाणक्य-नीति में कहा है—

अनारोग्यमनायुष्य, स्वर्ग्यं चाति भोजनम् ।
अपुण्यं लोकाविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥

'अति भोजन से, अस्वस्थता बढ़ती है, आयुर्बल क्षीण होता है, अनेक रोग पैदा होते हैं, पाप-कर्म में प्रवृत्ति होती है और लोगों में निंदा होती है। इसलिये अधिक भोजन करना वर्जित है।'

ब्रह्मचर्य की रक्षा के उपाय बताते हुए, प्रश्नव्याकरण सूत्र में कहा है—

नो पाण भोयणस्स अइमायाए आहार इत्ता ।

'ब्रह्मचारी, प्रमाण से अधिक भोजन पानी न खावे पिये।'

ब्रह्मचारी को, अधिक भोजन, कदापि न करना चाहिए। इसी प्रकार वह भोजन भी न करना चाहिए, जो गरिष्ठ, कामोत्तेजक, शक्तिवर्द्धक और खट्टा, मीठा, चरपरा आदि स्वाद विशेष लिये हुए हो। ब्रह्मचारी, हल्का, थोड़ा, निरस और रूखा भोजन ही करता है। प्रश्नव्याकरणसूत्र में, ब्रह्मचर्य की जो नौ गुप्तियें

बताई गई हैं, उनमें से एक गुप्ति, सरस भोजन न करने की ही है और वह इस प्रकार है—

नो पणीय रस भोई।

'ब्रह्मचारी, रस प्रणीत भोजन न करे।'

पुस्तकों के अनुसार, बुद्ध ने, अपने शिष्यों से कहा था, कि 'एक बार हल्का आहार करनेवाला, महात्मा है; दो बार सम्हल कर-यानी थोड़ा-थोड़ा—आहार करनेवाला, बुद्धिमान् और भाग्यवान् है; और इससे अधिक खाने वाला, महामूर्ख, अभागा और पशु का भी पशु है।'

ब्रह्मचारी को, ऐसे पदार्थों का भी सेवन नहीं करना चाहिए, जो मादक हों। मादक-द्रव्यों से, बुद्धि नष्ट होती है और बुद्धि नष्ट होने पर, समस्त दुष्कर्मों का होना सम्भव है। चा, गाँजा, भंग, चर्स, अफीम, शराब, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, चुरुट आदि नशा करनेवाले समस्त पदार्थों की गणना, मादक पदार्थों या मद में है। वैद्यक ग्रन्थों में कहा है—

बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारि तदुच्यते।

'जिन पदार्थों से बुद्धि नष्ट होती है, वे सब मादक-पदार्थ हैं।'

इसलिये ब्रह्मचारी को, ऐसे पदार्थों के सेवन से भी बचते रहना चाहिए।

अश्रृंगार

ब्रह्मचारी को, शृंगार करना मना है। शृंगार में, स्नान, दन्त-धावन, तेल-फुलेल का लगाना, अच्छे कपड़े और आभूषणादि पहनना आदि कार्य हैं। प्रश्नव्याकरण सूत्र में कहा है—

किंते अण्हाणग अदन्त धोवण सेय मल जल्ल धारण मूणव्वय केसलोएय खम दम अचेल गखुप्पिवास... ... ...

'ब्रह्मचारी, इन नियमों का पालन करे। स्नान और दन्तधावन न करे; यदि पसीना हो, तब भी मैल-मिश्रित पसीने से युक्त शरीर रखे; मौन रहे, निरर्थक बात-चीत न करे; केशों का लुंचन करे, तथा और भी जो कष्ट हों, उन्हें क्षमा सहित सहन करे; आत्मा का दमन करे; अल्पवस्त्री रहे; क्षुधा-तृषा सहन करे; लाघवता धारण करे, गर्मी-सर्दी सहन करे; भूमि अथवा काष्ठ-शय्या पर शयन करे; भिक्षा के लिये गृहस्थों के घर में प्रवेश करने पर आहार प्राप्त हो वा न हो, सम्मान हो अथवा अपमान हो, निन्दा हो या प्रशंसा हो, सभी अवस्थाओं में समभाव रखे, मच्छर, डाँस आदि द्वारा मिले हुए कष्टों को सहन करे; नियम सद्गुण और विनय का आचरण करे। ऐसा करने से, ब्रह्मचर्य स्थिर रहता है।'

इसप्रकार ब्रह्मचारी को—अन्य नियमों के साथ ही स्नान दन्तधावन आदि-शृंगार न करने का नियम भी बताया गया है। अन्य ग्रन्थकारों ने भी, ब्रह्मचारी के लिये ऐसे ही नियम बताये हैं। जैसे—

मल स्नानं सुगन्धाद्यैः स्नानं दन्त विशोधनम्।
न कुर्याद् ब्रह्मचारी च तपस्वी विधवा तथा॥

विद्यासंहिता-शिवपुराण।

'मल से शुद्धि पाने के लिए, या सुगन्धित—द्रव्य का सेवन करके स्नान करना दातून—मंजन आदि करना, ब्रह्मचारी तपस्वी और विधवा को उचित नहीं है।'

वर्ज्जयेन्मधु मांस गन्ध माल्यादि वास्वप्नांजनाभ्यंजन यानोपानच्छत्र काम क्रोध लोभ मोह वाद्य वादन स्नान दन्त-धावन हर्ष नृत्य गीत परिवाद भयानि ।

गौतम स्मृति ।

'ब्रह्मचारी, मधु, माँस, गन्ध, फूलमाला, दिन में शयन, अंजन, उबटन, सवारी, जूता, छाता, काम, क्रोध, लोभ, मोह, बाजा बजाना, स्नान, दातून, प्रसन्नता, नाच, गाना, निन्दा और भय को त्याग दे ।'

यही बात मनुस्मृति में भी कही गई है । उत्तराध्ययन सूत्र में, ब्रह्मचारी के लिए विशेष रूप से कहा गया है कि—

विभूसं परिवज्जिहा सरीर परिमण्डनं ।
बंभचेर रउ भिक्खू सिंगारत्थ न धारए ।

उत्तराध्ययन सूत्र अध्याय० १६ वाँ

'ब्रह्मचर्य में रत साधु, शरीर मण्डन-अर्थात् शरीर, नख, केश, आदि का संस्कार करना—और शृंगार-वस्त्रादि से शरीर को शोभित करना-सर्वथा प्रकार से त्यागे ।'

ब्रह्मचारी ऐसे स्थान का सेवन कदापि न करे—अर्थात् ऐसे स्थान पर न रहे-जहाँ स्त्रियों का निवास या आवागमन हो । प्रश्नव्याकरण सूत्र में, ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियों में से एक गुप्ति इसी विषय में है, जो इस प्रकार है—

निवास ।

नो इत्थी पसु पंडग सं सत्ताणि सिज्जा

सणाणि सेवित्ता भवइ ।

'जिस स्थान पर, स्त्री, पशु, या नपुंसक रहते हों, उस स्थान पर, ब्रह्मचारी निवास न करे।'

विना काम एकान्त में निवास करना भी ब्रह्मचर्य के लिये घातक है। विना काम एकान्त में रहने से, कुभावनाओं के जन्मने और ब्रह्मचर्य खण्डित होने का भय रहता है।

अध्ययन।

ब्रह्मचारी को, ऐसी पुस्तकें कदापि न पढ़नी चाहिएँ, जिनसे काम-विकार की जागृति हो; मन या इन्द्रियें दुर्विषयों की ओर दौड़ें, अथवा उनकी इच्छा करें। इस प्रकार का अध्ययन भी, ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा से भ्रष्ट करने में समर्थ है। ब्रह्मचारी के लिये, विशेषतः धर्म-ग्रन्थों का, ब्रह्मचारियों की कथाओं का और संसार की ओर से वैराग्य उत्पन्न करने वाली, संसार की नश्वरता वतलाने वाली, तथा संसार एवं दुर्विषयों से घृणा उत्पन्न करने वाली-पुस्तकों का अध्ययन ही लाभ प्रद है। ऐसे अध्ययन से ब्रह्मचर्य की रक्षा में सहायता मिलती है।

संग।

ब्रह्मचारी, कामी या व्यभिचारी का संग कदापि न करे। ऐसे लोगों की संगति से, कभी न कभी ब्रह्मचर्य का नष्ट होना सम्भव है। संगति का प्रभाव पड़ता ही है। विद्वानों का कथन है—

कामिनां कामिनीनाञ्च सङ्गात्कामी भवेत्पुमान्।

सूक्ति।

'कामी पुरुष और भोगवती स्त्री के साथ रहनेवाला भी, कामी बन जाता है।'

इसलिये ब्रह्मचारी को ऐसी संगति से सर्वथा बचते रहना चाहिये; जिससे कामोत्पत्ति और ब्रह्मचर्य नष्ट होने का भय रहता है।

स्त्री-परिचय।

ब्रह्मचारी को, स्त्रियों से परिचय न बढ़ाना चाहिये। प्रश्न व्याकरणसूत्र में, ब्रह्मचर्य की भी शुद्धि बताते हुए कहा है—

नो इत्थीणं सेविता भवइ।

'ब्रह्मचारी, स्त्री-सेवन न करे।'

नो इत्थीणं इन्दियाणि मणोहराइं रमाइं
आलोइत्ता णिज्झाइत्ता भवइ।

'ब्रह्मचारी, स्त्रियों के मनोहर और रमणीय अंगों का अवलोकन न करे, न प्रशंसा ही करे।'

स्त्रियों के देखने से भी, ब्रह्मचर्य के लिये बड़े-बड़े अनर्थ सम्भव हैं। शास्त्र में, यह बात नहीं मिलती कि मणिरथ पहले से ही दुराचारी था। मयणरेहा पर भी उसकी कुदृष्टि-मयणरेहा को देखने से पूर्व—न थी, किन्तु उसने जब से मयणरेहा को देखा तभी से उसकी कुदृष्टि—मयणरेहा पर—हुई। इस देखने मात्र से होने वाली कुदृष्टि का परिणाम यह हुआ, कि उसने, मयणरेहा के लिये, अपने छोटे भाई तक को मार डाला और अन्त में स्वयं को भी मरना पड़ा। इसलिये ब्रह्मचारी को, न तो स्त्रियों को देखना ही चाहिये, न उनसे परिचय ही बढ़ाना चाहिये।

अन्य ग्रन्थकारों ने भी, ब्रह्मचारी को, स्त्रियों से परिचय बढ़ाने से रोका है। जैसे—

अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः ।
प्रमादाह्युत्पथं नेतुं कामःक्रोध वशानुगम् ॥१॥

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥२॥

मनुस्मृति अ० २

'मैं विद्वान् या जितेन्द्रिय हूँ, ऐसा समझकर, स्त्रियों के समीप न बैठना चाहिये; क्योंकि चाहे विद्वान् हो या मूर्ख, देह के धर्म से, काम-क्रोध के वशीभूत शरीर को स्त्रियाँ कुमार्ग पर लेजाने में समर्थ हैं। इसलिये चाहे माता हो, वहन हो, या पुत्री हो, इनके साथ भी एकान्त स्थान म न बैठे; क्योंकि इन्द्रियों का बलवान् समूह शास्त्र की रीति से चलने-वाले पुरुप को भी अपने पथ से विचलित कर देता है।'

ब्रह्मचारी को स्त्रियों से परिचय न करने का उपदेश देते ए, शास्त्र में कहा है—

हत्थापाय पलिच्छिन्न कन्ननास विगप्पिअं ।
अवि वास सयं नारिं बंभयारी विवज्जए ॥

दशवैकालिक सूत्र अ० १० वाँ

'जिसके हाथ-पाँव टूटे हों, नाक-कान भी कटे हुए हों और जो अवस्था में भी सौ वर्ष की हो, ऐसी स्त्री के साथ भी ब्रह्मचारी परिचय न करे, न उसके साथ एकान्त में रहे।'

ऐसी स्त्री भी, पुरुप के हृदय को और ऐसा पुरुप भी स्त्री के हृदय को, विचलित करने में समर्थ हो सकता है; अच्छी स्त्री और अच्छे पुरुष की तो वात ही दूसरी है। ब्रह्मचारी को,

स्त्रियों के परिचय से बचना ही श्रेयस्कर है। पूज्य श्रीउदयसागरजी महाराज भी कहा करते थे—

गढ़ के पासे डुंगरी, कदियक गढ़ को भंग।
साधू पासे स्त्री, यो ही बड़ो कुसंग॥
यो ही बड़ी कुसंग भंग तो शील में होसी।
बैठ नारि के पास मूल की पूँजी खोसी॥
शीलादिक आचार के पालन से मन भागा।
नाथ कहे रे बालका ये जोग को रोग लागा॥

इसलिये ब्रह्मचारी को, स्त्री-परिचय से बचना चाहिए।

मातृ पुत्री और भगिनी भाव।

सर्वविरति ब्रह्मचर्य-व्रत के आराधक को, स्त्रियों के प्रति मातृ, पुत्री और भगिनी भाव रखना, बहुत ही हितकारी है। धर्म से किंचित् भी भय करने वाले के हृदय में, माँ, बहन और लड़की के लिए कोई विकार-भावना नहीं होती। हाँ, जिन्होंने मनुष्यता को ही तिलांजलि दे दी है; जिनमें से मनुष्यत्व ही निकल गया है; उनकी तो बात ही अलग है। ऐसे लोग माँ, बेटी और बहन तो क्या, पशुओं से भी दुष्कर्म करने से नहीं चूकते।

मातृ, पुत्री और भगिनी भाव, ब्रह्मचर्य की रक्षा का एक सर्वोत्कृष्ट साधन है। जो स्त्रियें आयु में बड़ी हैं, उनके प्रति मातृ-भाव; जो समान हैं, उनके प्रति भगिनी-भाव; और जो छोटी हैं, उनके प्रति पुत्री-भाव रखने से, हृदय में विकार उत्पन्न नहीं,

होता। मातृ-पुत्री और भगिनी भाव का क्या माहात्म्य है, इसके लिये एक दृष्टान्त दिया जाता है।

एक लखारा (लाख की चूड़ियें बनाकर बेचनेवाला) अपनी गधी पर, चूड़ियें लादे हुए चला जा रहा था। गधी धीरे चलती थी, इसलिये लखारा उसे हाँकते हुये कहता जाता था 'माँ! चल!' 'बहन चल!' बेटी! चल!' लखारे के इस कथन को सुनकर, मार्ग चलनेवाले लोग, उससे कहने लगे कि—तू कैसा मूर्ख है! गधी को भी माँ, बहन और बेटी कहता है? कहीं गधी भी माँ, बहन, या बेटी हो सकती है? लोगों की बात सुनकर, लखारा कहने लगा—भाई, यद्यपि गधी होने के कारण यह मेरी माँ, बहन या बेटी नहीं हो सकती, लेकिन स्त्रीजाति के प्रति माँ, बहन और बेटी की भावना को जन्म देनेवाली तो हो सकती है न? यदि मैं, इस गधी को मातृ, पुत्री और भगिनी भाव से न देखूँगा, तो स्त्रियों के प्रति ऐसी भावना कब रख सकूँगा? मैं, लखारा हूँ। स्त्रियों को चूड़ियाँ पहनाना मेरा काम है, इसलिये बड़े-बड़े घरों में मेरा प्रवेश है। नित्य ही, सुन्दर-सुन्दर स्त्रियों के कोमल-कोमल हाथ, चूड़ियाँ पहनाने के लिये, मेरे हाथों में आया करते हैं। यदि मैं, उनके प्रति मातृ, पुत्री और भगिनी भाव न रखूँ—किसी प्रकार की कुभावना रखूँ—तो मैं, लोगों में से अपना विश्वास भी खो दूँ, तथा व्यवसाय से भी हाथ धो बैठूँ। मैं, इस गधी को भी, बहन, माँ और बेटी के समान मानता हूँ, तभी अन्य स्त्रियों को भी, बहन, माँ और बेटी के समान मान सकता हूँ। लखारे की बात सुनकर, सबको चुप हो जाना पड़ा।

तात्पर्य यह, कि सब स्त्रियों के प्रति मातृ, भागिनी और पुत्री भाव रखने से, स्त्रियों के प्रति, कुभावनायें उत्पन्न नहीं होतीं। इस प्रकार ब्रह्मचर्यव्रत की रक्षा होती है।

वीर्य एक ऐसी वस्तु है, जिसे, बिना उपाय के शरीर में रोक रखना—पचा जाना—बहुत कठिन कार्य है। ऐसा करने के लिये, उपायों की आवश्यकता है। इस

उपवास

प्रकार के उपायों में से एक उपाय, उपवास या तपस्या है। जैनशास्त्रों में, तप का प्रतिपादन इसलिए भी विशेष रूप से किया गया है, कि उससे ब्रह्मचर्यव्रत सुरक्षित रहता है और ब्रह्मचर्य के बाधक दोष नष्ट हो जाते हैं। इस बात का समर्थन, अन्य ग्रन्थकार भी करते हैं। जैसे—

आहारान् पचति शिखी दोषान् आहार वर्जितः।

आयुर्वेद।

'आहार को, अग्नि पचाती है और दोषों को, उपवास पचाते हैं।'

ध्यान।

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए, ध्यान की भी आवश्यकता है। ब्रह्मचर्य की रक्षा का ध्यान भी एक प्रधान साधन है। ब्रह्मचर्य का वर्णन करते हुए, प्रश्नव्याकरण सूत्र में कहा है—

झाण वर कवाड़ सुकय मज्झप्प दिण्णफालिहं

'ध्यान ही, ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा करनेवाला कपाट है।'

मनुस्मृति में कहा है—

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषा प्राणस्य निग्रहात्॥

'जिस प्रकार, अग्नि में डालकर तपाने से, धातुओं का मल भस्म हो जाता है, उसी प्रकार, प्राणायाम करने से, इन्द्रियों के सब दोष भस्म हो जाते हैं।'

ब्रह्मचारी का जीवन, अनियमित न होना चाहिए। अनियमित जीवन, प्रत्येक दृष्टि से हानिप्रद है। ब्रह्मचारी का जीवन, नियमित हो। उसके प्रत्येक कार्य, नियमित रूप से ठीक समय पर हों। कोई समय, व्यर्थ या खाली न जावे, न कोई कार्य, असमय पर ही हो। अनियमितता से बचे रहने पर ही ब्रह्मचारी का ब्रह्मचर्य स्थिर रहता है।

नियमितता।

ब्रह्मचारी के लिये, सब से बड़ा नियम, ईश्वर-प्रार्थना है, नियमित रूप से प्रातः सायं ईश्वर की प्रार्थना, ब्रह्मचर्य की रक्षा का एक अच्छा साधन है। ईश्वर-प्रार्थनादि नियमों का पालन करने से, ब्रह्मचर्य के साथ ही, दूसरे कार्यों की सफलता में भी सहायता मिलती है।

ईश्वर-प्रर्थना।

इन नियमों के सिवा, और भी बहुत से छोटे-छोटे नियम ऐसे हैं, जिनका पालन करने पर तो ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है, और पालन न करने पर, ब्रह्मचर्य दूषित हो जाता है। जैसे कि ब्रह्मचारी को, ओढ़ना-बिछौना नरम न रखना, कड़ा रखना, मुलायम या चटक-मटक के वस्त्र न पहनना, स्त्रियों के चित्र न देखना और न रखना आदि। इस प्रकार के समस्त नियमों का पालन करनेवाला ही, अपने व्रत को निर्दोष रूप में पाल सकता है।

स्त्रियें और ब्रह्मचर्य।

'किन्नाप्नोति रमा रूपा ब्रह्मचर्य तपस्विनी।

'इस लक्ष्मी रूपा स्त्री के लिये, कुछ भी कठिन नहीं है, जो ब्रह्मचर्य-तप की तपस्विनी है।'

जैनशास्त्रों में, ब्रह्मचर्य पालन के लिये स्त्रियों का स्थान।

कुछ लोगों का कथन है, कि स्त्रियों को, ब्रह्मचर्य न पालना चाहिए; लेकिन जैनशास्त्र, इस कथन के समर्थक नहीं, अपितु विरोधी हैं। जैन-शास्त्रों में, ब्रह्मचर्य का जैसा उपदेश पुरुषों के लिये है, वैसा ही उपदेश, स्त्रियों के लिये भी है। जैन-शास्त्रों का यह उपदेश, आदर्श-रहित नहीं, किन्तु आदर्श-सहित है। आदिनाथ भगवान ऋषभदेव की, ब्राह्मी और सुन्दरी नाम्नी कन्याओं ने, कर्मभूमि के प्रारम्भिक युग में ही ब्रह्मचारिणी रहकर, स्त्रियों के लिए, ब्रह्मचर्य पालन करने का आदर्श रख दिया था। उन्नीसवें तीर्थङ्कर भगवान मल्लिनाथ, स्त्री ही थे। स्त्री होते हुए भी, उन्होंने अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया था और तीर्थङ्कर-पद प्राप्त किया था। इसी प्रकार, राजमती, चन्दनबाला आदि सतियों ने भी, अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया है। सारांश यह कि 'स्त्रियें, ब्रह्मचर्य न पालें, ब्रह्मचारिणी न हों' यह बात, जैन-शास्त्रों के

समीप निरर्थक है । जैन-शास्त्र, इस विषय में, स्त्री और पुरुष दोनों को समान अधिकारी बताते हैं; आयु, देश, काल आदि किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाते । वे कहते हैं, कि चाहे स्त्री हो या पुरुष, ब्रह्मचर्य का पालन जो भी करे, इससे होनेवाले लाभ को वही प्राप्त कर सकता है ।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियें, ब्रह्मचर्य का पालन भी, अधिक सुचारुरूप से कर सकती हैं । जैन शास्त्रों में, ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं, जिन में, स्त्रियों ने, ब्रह्मचर्य से पतित होते हुए पुरुष को ब्रह्मचर्य पर स्थिर किया । जैसे कि—सती राजमती ने रथनेमि को और कोशा नाम्नी श्राविका ने, स्थूलभद्रजी के एक गुरुभाई को ब्रह्मचर्य से पतित होने से बचाया था ।

स्त्रियों की ब्रह्मचर्य में दृढ़ता ।

तात्पर्य यह कि ब्रह्मचर्य, पुरुषों ही के लिये नहीं है, किन्तु स्त्रियों के लिये भी है । स्त्रियाँ भी ब्रह्मचर्य का पालन कर सकती हैं ।

सर्वविरति-ब्रह्मचर्य-व्रत की आराधना के लिये, स्त्रियों को भी उन नियमों का पालन करना आवश्यक है, जो पुरुषों के लिए बताये गये हैं । हाँ, यह अन्तर अवश्य होगा, कि जहाँ ब्रह्मचारी के लिए स्त्रियों का साथ और उनकी प्रशंसा आदि वर्ज्य है, वहाँ ब्रह्मचारिणी को, पुरुषों का साथ, उनकी कथा आदि वर्ज्य समझनी चाहिए और जहाँ ब्रह्मचारी को स्त्रियों से बचने का नियम बताया गया है, वहाँ ब्रह्मचारिणी को, पुरुषों से बचने का नियम समझना चाहिये । शेष सब नियम, स्त्रियों के लिये भी वैसे ही हैं, जैसे पुरुषों के लिये हैं और जो बताये जा चुके हैं ।

विवाह !

तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु सुरभि
क्षुधार्तः सन् शालीन् कवलयति शाकादि वलितान् ।
प्रदीप्त कामाग्नौ सुदृढ तर माश्लिष्यति वधूं
प्रतीकारो व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति जनः ॥

भर्तृ० वैराग्यशतक ।

'जब मनुष्य का कण्ठ प्यास से सूखने लगता है तब वह, शीतल, सुगन्धित और निर्मल जल पीकर, तृषा के दुःख से मुक्त होता है; जब भूख सताती है, तब शाकादि के साथ भोजन करके क्षुधा का कष्ट मिटाता है; जब कामाग्नि प्रचण्ड होती है, तब सुन्दर-स्त्री को हृदय से लगाता है; इस प्रकार, जल, भोजन और स्त्री, एक एक रोग की दवा है, लेकिन लोगों ने उल्टा ही मान रखा है। अर्थात् लोग, इन दवाओं में भी सुख मानते हैं।'

मनुष्य जन्म उत्तम क्यों है ?

मनुष्य-शरीर, सब शरीरों से उत्तम क्यों माना जाता है, इसके लिये कहा है—

आहार निद्रा भय मैथुनंच सामान्य मेतत् पशुभिर्नराणां ।
धर्मो हितेषा मधिको विशेषो धर्मेणहीना पशुभिः समाना ॥

'आहार, निद्रा, भय और मैथुन की दृष्टि से तो, मनुष्य और पशु समान ही हैं, लेकिन मनुष्य में, धर्म है; इसी से वह पशु की अपेक्षा बड़ा है; अन्यथा धर्महीन मनुष्य, पशु के ही समान है।'

मनुष्य में धर्म है, इसीलिए वह सब प्राणियों में उत्तम माना जाता है; लेकिन आहारादि में ही धर्म नहीं है। यदि आहारादि में ही धर्म होता, तो उक्त श्लोक में धर्म को, आहारादि से भिन्न न बताया जाता। इस श्लोक में, धर्म को आहारादि से भिन्न बतलाया गया है; इसलिए यह देखना है कि धर्म क्या है, जिसके होने पर मनुष्य सब प्राणियों में उत्तम माना जाता है ?

इस लोक और परलोक में जिसके द्वारा उन्नति हो, उसका नाम धर्म है। भगवान महावीर ने धर्म के-सूत्र-धर्म और चरित्र-धर्म ये-दो भेद बताये हैं। इनका विवेचन यहाँ आवश्यक नहीं है; यहाँ तो केवल यह बताना है, कि भगवान ने, चरित्र-धर्म की आराधना के लिए जो पाँच व्रत बताये हैं, उनमें से, चौथा व्रत ब्रह्मचर्य है। अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करना, धर्म है। इसका पालन करने पर ही, मनुष्य, सब प्राणियों में उत्तम हो सकता है। भोग भोगने-अब्रह्मचर्य का सेवन करने—के कारण, मनुष्य, सब प्राणियों में उत्तम नहीं कहला सकता।

आत्मा, जब निगोद में पड़ा था, तब इसे यह भी मालूम नहीं था, कि मैं जीव हूँ। पुण्य के बढ़ने से यह आत्मा, निगोद से निकल कर, अनेक योनियों को भोगता हुआ–अनेक प्रकार के कष्ट सहता हुआ—इस मनुष्य-जन्म को प्राप्त कर सका है। आत्मा ने, पूर्व–भोगी हुई योनियों में, दुर्विषय-भोग को ही इष्ट

मान रखा था, इसलिए इसने उन्हें खूब भोगा, लेकिन न तो इसे उन भोगों की ओर से तृप्ति ही हुई, न यह बार-बार के जन्म-मरण से ही मुक्त हुआ। उस समय तो इसको आज का-सा ज्ञान न था—इसकी बुद्धि, विकसित न थी; यह, धर्म को जानता ही न था—लेकिन यदि मनुष्य-जन्म पाकर भी, यह पशु-योनि में भोगे जानेवाले भोगों को ही भोगे, उन्हीं में सुख माने, जन्म-मरण से मुक्त होने का उपाय न करे, तो इसकी, अधिक भूल, अज्ञानता, या मूर्खता और क्या होगी? जो भोग, पशु-शरीर में भी भोगे जा सकते हैं, उनके भोगने में, इस मनुष्य-शरीर को नष्ट करना कौनसी बुद्धिमानी है? केवल चार आने में आनेवाली मिठाई के बदले में, चिन्तामणि ऐसा रत्न दे देने की मूर्खता के समान, क्षणिक, अस्थायी और हर प्रकार से हानि करनेवाले दुर्विषय-भोग में, उत्कृष्ट मनुष्य-जन्म खो देने की मूर्खता से अधिक मूर्खता और क्या होगी? मनुष्य-शरीर, दुर्विषय-भोग के लिए नहीं है; किन्तु उन्हें त्यागने के लिए है। मनुष्य-जन्म प्राप्त होने का, वास्तविक लाभ तभी है, जब, दुर्विषय-भोग त्याग कर ब्रह्मचर्य रूपी तप का अनुष्ठान किया जावे। भगवान ऋषभदेव ने, अपने पुत्रों को उपदेश देते हुए कहा था—

नायं देहो देह भाजांनृलोके,

कष्टान् कामानर्हते विड्भुजांये।

तपो दिव्यं पुत्रकायेन सत्त्वं,
शुद्ध्येद्यस्माद्ब्रह्म सौख्यंत्वनन्तम् ॥

भागवत ५ वाँ स्कंध ५ वाँ अध्याय ।

'हे पुत्रो ! देहधारियों का यह शरीर, दुःखदायी-विषय-भोग के योग्य नहीं है, क्योंकि दुःखदायी विषय-भोग तो, विष्टा खानेवाले नारकीय जीवों को भी मिल जाता है; अतएव, मैं कहता हूँ, कि यह शरीर दिव्य तप करने योग्य है, जिससे अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और अनन्त ब्रह्म-सुख प्राप्त होता है।'

यद्यपि, मनुष्य-जन्म की सफलता और पूर्णतया-धर्म-चरण, सर्वविरति ब्रह्मचर्य के पालन में ही है, लेकिन, ऐसा न कर सकने वाले पुरुष स्त्री को, कम से कम क्रमशः २५ और १६ वर्ष की अवस्था तक तो, अखण्ड ब्रह्मचर्य पालना ही चाहिये। इस अवस्था तक अखण्ड ब्रह्मचर्य न पालना, अपने आपको, अवनति, रोग, एवं मृत्यु के मुख में धकेलना है। स्मृतिकार कहते हैं—

आवश्यक ब्रह्मचर्य

चतुर्थ मायुषो भाग मुषित्वाऽऽद्यं गुरोःकुले।
अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥

मनुस्मृति ।

'पूर्णायु का चौथा भाग-यानी १०० वर्ष में से २५ वर्ष-गुरुकुल में रहकर, अविप्लुत रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करे और फिर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे।'

इस प्रकार, कम से कम २५ और १६ वर्ष की अवस्था तक तो, प्रत्येक पुरुष-स्त्री को अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करना ही चाहिए।

२५ और १६ वर्ष की अवस्था होने पर ही, पुरुष और स्त्री, इस बात के निर्णय पर पहुँचते हैं, कि हम, आयुभर ब्रह्मचर्य पाल सकते हैं या नहीं ? अर्थात्, सर्वविरति-ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार करने की शक्ति, हममें है या नहीं ! जो लोग ऐसा करने में समर्थ होते हैं, वे तो, सर्वविरति-ब्रह्मचर्य की ही आराधना करते हैं—विवाह के झंझटों में नहीं फँसते—लेकिन, जो लोग, सर्वविरति ब्रह्मचर्य पालने में अपनेआप को असमर्थ देखते हैं, वे विवाह न करके, दुराचार में प्रवृत्त नहीं होते। यद्यपि जैन-शास्त्रों में तो, सर्वविरति ब्रह्मचर्य का ही विधान पाया जाता है, विवाह-विषयक विधान नहीं पाया जाता, लेकिन, नीतिकारों ने, सर्वविरति ब्रह्मचर्यव्रत पालने में असमर्थ लोगों के लिए, विवाह का विधान और विवाह न करके दुराचार में प्रवृत्त होने का निषेध किया है। अर्थात् यह कहा है, कि यदि विवाह नहीं करना है, तो ब्रह्मचर्य पाले, लेकिन दुराचार में प्रवृत्त न हो। जैन शास्त्रों में भी, ऐसा विधान कहीं नहीं मिलता, कि जो लोग सर्वविरति ब्रह्मचर्य पालने में असमर्थ हैं, उन्हें, विवाह न करने देकर, दुराचार में प्रवृत्त होने दिया जावे। हाँ, जैनशास्त्रों में, दुराचार-प्रवृत्ति का निषेध अवश्य है। वे, विवाह न करके—या विवाह करके—पर-स्त्री-गमन करनेवाले को तो दुराचारी कहते हैं, लेकिन विवाह करनेवाले को, दुराचारी नहीं कहते।

विवाह कौन करते हैं ?

जो लोग, सर्वविरति ब्रह्मचर्य का पालन करने में समर्थ हैं, दुर्विषयों में, इन्द्रिय और मन को प्रवृत्त न होने देने की शक्ति रखते हैं, उनके लिए तो, विवाह न करना ही श्रेयस्कर है; लेकिन

जो लोग ऐसा करने में असमर्थ हैं, और जिन्हें विवाह न करने पर, दुराचार में प्रवृत्ति होने का भय है, नीतिज्ञों के समीप, ऐसे लोगों का विवाह करना, दुराचार में प्रवृत्त होने की अपेक्षा बुरा नहीं, किन्तु अच्छा माना जाता है। हाँ, विवाह को माना जावे दवा के रूप में। पाश्चात्य विद्वान् सन्त फ्रान्सिस कहता है कि 'कामवासना की दवा के रूप में विवाह बड़ी अच्छी वस्तु है, लेकिन वह कड़ी है; इसलिये यदि उसका व्यवहार बहुत सम्हाल कर न किया जावे, तो खतरनाक भी है।' इस प्रकरण के प्रारम्भ में जो श्लोक दिया गया है, उसमें, भर्तृहरि ने भी यही बात कही है। इसप्रकार विवाह, काम-वासना रूपी रोग की दवा के सिवा और किसी सुख का साधन नहीं माना जा सकता, और दवा लेने की आवश्यकता, उन्हीं लोगों को होती है, जो, रोग को और किसी उपाय से नहीं मिटा सकते। अर्थात्, विवाह केवल वे ही लोग करते हैं, जो काम-वासना का, विवेक-द्वारा दमन करने में असमर्थ हैं।

विवाह सब के लिए आवश्यक नहीं हैं।

कांम-वासना रूपी रोग को, विवेक रूपी औषधि से, दबाया जा सकता है। जिनमें इस औषधि का अभाव या इसकी कमी है, अथवा पूर्ण-विवेकी होते हुए भी पुण्य-फलों की निर्जरा करना जिनके लिये आवश्यक है और जो निकाचित लेप में पड़े हुए हैं; वे ही, विवाह करते हैं। अर्थात्, विवाह ऐसे लोगों के लिये है, जिनमें, विवेक साहस और आत्मबल की कमी है अथवा जिन्हें पुण्य-फल की निर्जरा करनी है। एक पाश्चात्य विद्वान् का कथन है, कि 'कामवासना इतनी प्रबल नहीं होती, कि जिसका, विवेक या नैतिक बल

से, पूर्णतया दमन न किया जा सके। विषयेच्छा भी, नींद और भूख के समान ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसकी तृप्ति अनिवार्य हो।' तात्पर्य यह, कि काम-वासना का दमन किया जा सकता है, इसलिए प्रत्येक के लिए विवाह करना आवश्यक नहीं है।

कभी कोई कहे कि 'प्रजोत्पत्ति की दृष्टि से, विवाह करना आवश्यक है, यदि सब लोग विवाह न करके ब्रह्मचारी होने लगें, तो फिर संसार का ही अन्त हो जावेगा!' ऐसे लोगों को यह उत्तर दिया जाता है, कि इस प्रकार की शंका निर्मूल है। अनादि होने के कारण संसार का अन्त नहीं हो सकता, न सभी लोग, ब्रह्मचर्य का पालन ही कर सकते हैं। कभी थोड़ी देर के लिए ऐसा मान भी लिया जावे, तब भी प्रजोत्पत्ति और संसार की तुम्हें इतनी चिन्ता क्यों? यदि ब्रह्मचर्य का पालन करने से, संसार शून्य भी हो जावे, तो इसमें किसी की क्या हानि है? यदि प्रजोत्पत्ति न भी हुई, या संसार का अन्त भी हो गया, तब भी हर्ज क्या होगा? तुम्हें तो केवल यह देखना चाहिए, कि हमारा उद्धार, विवाह करने—प्रजा या मनुष्य-संसार बढ़ने-से होता है, या ब्रह्मचर्य पालन करने से? इस विषय में, गांधी जी लिखते हैं—'आदर्श ब्रह्मचारी को, कामेच्छा या सन्तानेच्छा से कभी जूझना नहीं पड़ता; ऐसी इच्छा उसे होती ही नहीं।' महाभारत के अनुसार, भीष्मपितामह ने भी यही कहा था, कि 'ब्रह्मचारी को संसार या सन्तान की इच्छा नहीं होती, न इनकी उत्पत्ति या वृद्धि के लिए वह अपने ब्रह्मचर्य को ही नष्ट कर सकता है।' इस प्रकार, सब लोगों के लिए विवाह करना आवश्यक नहीं है, किन्तु जो ब्रह्मचर्य का पालन करने में असमर्थ हैं,

अथवा जिन्हें पुण्य-फल की निर्जरा करनी है, वे ही लोग विवाह करते हैं।

आजकल, पाश्चात्य देशों के बहुत से स्त्री-पुरुषों में, ये विचार फैल रहे हैं, कि विवाह करके स्वतन्त्रता खोने-किसी एक के होकर रहने और बालक-बालिका आदि के पालन-पोषण तथा स्त्री आदि के स्थायी व्यय में पड़ने-की अपेक्षा यह अच्छा है, कि थोड़ी देर के लिए किसी स्त्री या पुरुष से सम्बन्ध कर लिया जावे और काम-वासना पूरी करके, उसे त्याग दिया जावे। ऐसे लोग सोचते हैं कि 'विषय-भोग, चाहे स्व-स्त्री तथा स्व-पति से किया जावे, या पर-स्त्री तथा पर-पुरुष से किया जावे, रज-वीर्य-नष्ट होने की दृष्टि से तो दोनों समान ही हैं। बल्कि विवाहित-जीवन में, इस दृष्टि से, और अधिक हानि है। क्योंकि, स्व-स्त्री या स्व-पति के साथ तो थोड़ी इच्छा होने पर भी दुर्विषय भोग सकते हैं, लेकिन पर-स्त्री या पर-पुरुष के साथ दुर्विषय तभी भोगेंगे, जब, कामेच्छा बहुत प्रबल हो जावेगी और रोकने से न रुक सकेगी।'

ब्रह्मचर्य न पाल सकने पर अविवाहित रहने से हानि।

इस प्रकार की युक्तियों द्वारा, पाश्चात्य देशों के बहुत से लोग, विवाहित-जीवन की जिम्मेदारियों से बचने के लिए और स्वच्छन्द रहने के लिए-ब्रह्मचर्य न पाल सकने पर भी अविवाहित रहना अच्छा समझते हैं। भारत के कुछ लोग भी, ऐसे विचारों के समर्थक हैं, और पाश्चात्य लोगों की युक्तियों के साथ ही, यह दलील और पेश करते हैं कि 'स्व-स्त्री तथा स्व-

पति के साथ मैथुन करने में भी पाप होता है, और परस्त्री तथा पर-पति के साथ मैथुन करने में भी पाप होता है। फिर विवाह क्यों किया जावे ? वल्कि विवाह करने से अधिक पाप होता है। क्योंकि, विवाह समय में भी आरम्भ-समारम्भ होता है, तथा विवाह के पश्चात् भी स्त्री को भोजन, वस्त्र आदि देने में, और सन्तान के पालन-पोपण, विवाह आदि में-आरम्भ-समारम्भ होता है। इस तरह, आरम्भ-समारम्भ का पाप, परम्परा पर वढ़ता ही जाता है। इसलिए, पर-स्त्री से मैथुन करने की अपेक्षा विवाह करने में अधिक पाप है।' इत्यादि कुतर्कें पैदा करते हैं।

इस प्रकार के विचार वाले लोग, ब्रह्मचर्य के महत्व से तो अनभिज्ञ हैं ही, लेकिन विवाह के महत्व को भी नहीं समझ पाये हैं। वे समझते हैं, कि विवाह केवल दुर्विपय-भोग के लिए ही है, इससे अधिक विवाह का कोई मूल्य नहीं है। अपनी इस समझ पर भी वे, दूरदर्शिता से विचार नहीं करते। थोड़ी देर के लिए विवाह केवल विपय-भोग के लिये ही मान लिया जावे, तव भी यदि विवाह-प्रथा न होती, तो संसार में अशान्ति का साम्राज्य छा जाता। मनुष्य स्वभावतः अपने ऐसे प्रेमी के प्रेम में किसी दूसरे का साझी होना नहीं सह सकता; इसलिए एक ही पुरुप को चाहनेवाली अनेक स्त्रियें, या एक ही स्त्री को चाहनेवाले अनेक पुरुप, आपस में लड़ कर मर जाते। आज भी सुना जाता है, कि एक वेश्या के पीछे अनेक नर-हत्या होती हैं। यदि वही वेश्या किसी एक की होती, तो सम्भवतः ऐसी हिंसा का समय न आता। इसीप्रकार-विवाह प्रथा न होने पर, मनुष्य उस दाम्पत्य-प्रेम से सर्वथा वंचित रह जाता, जो विवाहित पति-

पत्नी में हुआ करता है। विवाह की प्रथा का स्थान यदि नैमेत्तिक-सम्बन्ध को ही प्राप्त होता, तो स्त्री पुरुष एक दूसरे से उतने ही समय तक प्रेम करते, एक दूसरे की उतने ही समय तक पर्वा करते, जबतक कि विषय-भोग नहीं भोगा जा चुका है, या जबतक वह विषय-भोग भोगने के योग्य है। विषय-भोग, भोग चुकने पर, या इस योग्य न रहने पर, स्त्री-पुरुष एक दूसरे की उसी प्रकार उपेक्षा करते, जिस प्रकार, वेश्या की उसका जार पति और जार पति की, वेश्या उपेक्षा करती है। विवाह-प्रथा न होने पर और मनुष्यमात्र के स्वच्छन्द हो जाने पर, सहानुभूति, दया, और प्रेम का भी पूर्ण सद्भाव न रहता। स्त्री पुरुष, अपने आपको उस समय तक तो सुखी मानते रहते, जब तक कि उनमें विषय-भोग भोगने की शक्ति है, लेकिन इस शक्ति के न रहने पर, जीवन, दुःखमय, सहारा-हीन एवं पश्चात्ताप-पूर्ण होता। क्योंकि संसार में, जनन-क्रिया (सन्तान-प्रसव) को, प्रेम, दया, सहानुभूति, अहिंसा आदि के प्रसार का बहुत श्रेय है। विवाह-प्रथा न होने पर, सन्तान की जवाबदारी से जिस प्रकार पुरुष बचना चाहते, उसी प्रकार स्त्रियें भी बचना चाहतीं। परिणामतः या तो भ्रूण-हत्या होती, या बालहत्या होती, या सन्तति-निरोध के कृत्रिम उपायों से काम लिया जाता और धीरे-धीरे, जनन-क्रिया के साथ ही दया, प्रेम, अहिंसा, सहानुभूति आदि का भी लोप हो जाता।

विवाह-प्रथा का स्थान, यदि स्त्री-पुरुष की स्वच्छन्दता को प्राप्त होता, तो मनुष्यों का सांसारिक-जीवन, नीरस, एवं निरुद्देश्य होता। उस समय, अधिक से अधिक उद्देश्य, अच्छी

स्त्री या अच्छे पुरुष से काम-भोग भोगना ही होता और इस उद्देश्य के साधक कारणों को, प्रोत्साहन दिया जाता। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, आदि सिद्धान्त, इस उद्देश्य में बाधक माने जाते; इसलिए इन्हें समूल नष्ट किया जाता, जिससे संसार में अशान्ति छा जाती और हाहाकार मच जाता। तात्पर्य यह, कि यदि विवाह को केवल विषय-भोग के लिये ही माना जावे, तब भी नैमैत्तिक-सम्बन्ध की प्रथा होने पर, सांसारिक-जीवन शान्ति-पूर्वक न बीत सकता।

विवाह, विषय-भोग के लिये नहीं है।

वास्तव में, विवाह दुर्विषय-भोग के लिए नहीं है; किन्तु ब्रह्मचर्य पालन की कमजोरी को धीरे-धीरे मिटाकर, ब्रह्मचर्य पालन की पूर्ण क्षमता प्राप्त करने के लिए है। यदि प्रतिक्षण बढ़नेवाली दुर्विषय-भोग की लालसा को, बिना विवाह किये ही—विवेक से—दबाने की शक्ति हो, तो विवाह करने की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती। इस शक्ति के अभाव में ही विवाह किया जाता है। जिसप्रकार यदि आग न लगने दी गई, या लगने पर तत्क्षण बुझा दी गई, तब तो दूसरा उपाय नहीं किया जाता और तत्क्षण न बुझा सकने पर—बढ़ जाने पर—उसकी सीमा करके उसे बुझाने का प्रयत्न किया जाता है। इसके लिए, जिस मकान में आग लगी होती है, उस मकान से दूसरे मकानों का सम्बन्ध तोड़ दिया जाता है, जिसमें वह फैल न सके और इस प्रकार उसे सीमित करके फिर बुझाने का प्रयत्न किया जाता है। वह आग, जो लगने के समय ही न बुझाई जा सकी थी, इस उपाय से बुझा दी जाती है, बढ़ने नहीं पाती। यदि पहले ही

आग न लगने दी जाती, या लगने के समय ही बुझा दी जाती तब तो इस सीमान्तर्गत घर की भी हानि न होती, लेकिन ऐसा न कर सकने पर, यदि आग को सीमित न कर दिया जाता, तो उसके द्वारा अनेक मकान भस्म हो जाते। ठीक यही दृष्टान्त विवाह के लिए भी है। यदि मनुष्य अपने में काम-वासना की आग उत्पन्न ही न होने दे, या उत्पन्न होने के समय ही उसे विवेक द्वारा बुझा सके, तब तो विवाह की आवश्यकता ही नहीं रहती, लेकिन न दबा सकने पर, उस आग को विवाह द्वारा सीमित कर दिया जाता है और फिर उसे बुझाने की चेष्टा की जाती है। विवाह द्वारा कामेच्छा को सीमित कर देने से, वह बढ़ने नहीं पाती और इस प्रकार मनुष्य, असीम हानि से बच जाता है। यदि विषयेच्छा की आग, उत्पन्न न होने देने या विवेक द्वारा उसे दबा सकने की क्षमता न होने पर भी, उत्पन्न विषयेच्छा की पूर्ति के लिए स्वच्छन्दता से काम लिया जावे, तो वह बढ़कर भयंकर हानि पहुँचानेवाली हो जाती है। तात्पर्य यह, कि विवाह, दुर्विषयेच्छा को बढ़ाने के लिए नहीं है, किन्तु घटाने के लिए है, और स्वच्छन्दता से, दुर्विषय-भोग की इच्छा बढ़ती है, घटती नहीं है। इसके सिवा, विवाहित जीवन बिताने में, दया, अनुकम्पा, आदि उन सद्गुणों का भी बहुत कुछ लाभ हो सकता है, जिनका लाभ स्वच्छन्दता में नहीं हो सकता। सन्तान को पालने-पोसने की दया, विवाहित-जीवन में ही की जाती है, स्वच्छन्द जीवन में तो उससे बचने-सन्तान को नष्ट करने-की इच्छा रहती है। इसलिए, ब्रह्मचर्य न पाल सकने पर, दुराचार-पूर्ण जीवन, श्लाघ्य नहीं कहला सकता। इस विषय में

गांधीजी लिखते हैं—'यद्यपि, महाशय ब्यूरो असण्ड ब्रह्मचर्य को ही सर्वोत्तम मानते हैं, लेकिन सबके लिए यह शक्य नहीं है; इसलिए वैसे लोगों के लिए, विवाह-बन्धन केवल आवश्यक ही नहीं, वरन् कर्त्तव्य के बराबर है।' गांधीजी, आगे लिखते हैं—'मनुष्य के समाजिक जीवन का केन्द्र, एक पत्नीव्रत तथा एक पतिव्रत ही है।' यह तभी हो सकता है, जब स्वच्छन्दता को बुरा समझा जावे और उसे विवाह-बन्धन द्वारा त्यागा जावे।

जो लोग, पर-स्त्री-पति और स्व-स्त्री-पति के विषय-भोग में समान पाप मानते हैं, वे भी गलत रास्ते पर हैं। स्व-स्त्री-पति और पर-स्त्री-पति के विषय-भोग में, प्रत्येक दृष्टि से बहुत अन्तर है, जिसका कुछ दिग्दर्शन ऊपर कराया भी गया है। इसलिए ब्रह्मचर्य के अभाव में, अविवाहित जीवन, सर्वथा निन्द्य है।

विवाह, पुरुष और स्त्री के आजीवन साहचर्य का नाम है। यह साहचर्य, काम-वासना की तृषा, और ब्रह्मचर्य के समीप पहुँचाने का साधन है। पाश्चात्य विद्वान् ब्यूरो लिखता है, कि 'विवाह करके भी, विषय-विलासमय असंयम, धार्मिक और नैतिक, दोनों ही दृष्टि से अक्षम्य अपराध है। असंयम से, वैवाहिक-जीवन को ठेस पहुँचती है। सन्तानोत्पत्ति के सिवा और सभी प्रकार की काम-वासना-तृप्ति, दाम्पत्य प्रेम के लिए बाधक और समाज तथा व्यक्ति के लिए हानिकारक है।' इस कथन द्वारा ब्यूरो ने, जैन-शास्त्रों के कथन को पुष्ट किया है। जैन-शास्त्र, यही बात कहते हैं। गांधीजी भी लिखते हैं—'विवाह बन्धन की पवित्रता को क़ायम रखने के लिए भोग नहीं, किन्तु आत्म-संयम ही जीवन का धर्म समझा जाना चाहिये। विवाह का उद्देश्य, दम्पति के हृदयों से

विकारों को दूर करके, उन्हें ईश्वर के निकट ले जाना है।'

विवाह रूपी आजीवन साहचर्य, ऐसे स्त्री-पुरुष का होता है, जो स्वभाव, गुण, आयु, बल, वैभव और सौन्दर्य आदि को दृष्टि में रखकर, एक दूसरे को पसन्द करें। स्त्री-पुरुष में से, किसी एक की ही पसन्दगी पर विवाह नहीं होता है, किन्तु दोनों की पसन्दगी से किया हुआ विवाह ही, विवाह के अर्थ में माना जा सकता है। किसी एक की इच्छा और दूसरे की अनिच्छा पर होनेवाला विवाह, विवाह नहीं है। विवाह-बन्धन, स्त्री और पुरुष दोनों की स्वेच्छा पर ही निर्भर है।

विवाह विषयक अधिकार

विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने में, पुरुष, और स्त्री के अधिकार समान हैं। अर्थात्, जिसप्रकार पुरुष, स्त्री को पसन्द करना चाहता है, उसी प्रकार, स्त्री भी पुरुष को पसन्द करने की अधिकारिणी है। बल्कि, इस विषय में, स्त्रियों के अधिकार, पुरुषों से अधिक हैं। स्त्रियें, अपने लिए वर पसन्द करने को स्वयम्वर करती थीं, ऐसे प्रमाण तो जैन-शास्त्र और अन्य ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर मिलते हैं, लेकिन पुरुषों ने अपने लिए स्त्री-पसन्द करने को, स्वयंवर की ही तरह का कोई स्त्री सम्मेलन किया हो, ऐसा प्रमाण कहीं नहीं मिलता। इस प्रकार, स्त्री की पसन्दगी को विशेषता दी जाती थी। फिर भी यह बात नहीं थी, कि जिस पुरुष को स्त्री पसन्द करे, पुरुष के लिए उसके साथ विवाह करना आवश्यक हो। स्त्री के पसन्द करने पर भी, यदि पुरुष की इच्छा उसके साथ विवाह करने की नहीं है, तो विवाह करने से इनकार कर देना, कोई नैतिक या सामाजिक

अपराध नहीं माना जाता था, न अब माना जाता है। विवाह के लिए, स्त्री और पुरुष, दोनों ही को समान अधिकार हैं, और यह नहीं है कि पसन्द आने के कारण, पुरुष, स्त्री के साथ और स्त्री, पुरुष के साथ, विवाह करने के लिए नीति या समाज की ओर से बाध्य हो। विवाह तभी हो सकता है, जब स्त्री-पुरुष, एक दूसरे को पसन्द करलें, और एक दूसरे के साथ विवाह करने के इच्छुक हों। इस विषय में जबरदस्ती को स्थान नहीं है।

ग्रन्थकारों ने, विशेषतः तीन प्रकार के विवाह बताये हैं; देव-विवाह, गन्धर्व-विवाह और राक्षस-विवाह। ये तीनों विवाह, क्रमशः उत्तम, मध्यम, और कनिष्ट माने जाते हैं। इन तीनों विवाह की व्याख्या नीचे बताई जाती है।

जो विवाह, वर और कन्या, दोनों की पसन्दगी से हुआ हो, जिसमें वर ने कन्या के और कन्या ने वर के गुण-दोष देख कर एक दूसरे ने, एक दूसरे को अपने समान माना हो, जिस विवाह के करने से वर और कन्या के माता-पिता आदि अभिभावक भी प्रसन्न हों, जो विवाह, रूप, गुण, स्वभाव आदि की समानता से, विधि और साक्षी-पूर्वक हुआ हो और जिस विवाह में, दाम्पत्य-कलह का भय न हो, तथा जो विवाह, दुर्विषय-भोग की इच्छा से नहीं, किन्तु पूर्ण-ब्रह्मचर्य के आदर्श तक पहुँचने के उद्देश्य से किया गया हो, उसे, देव-विवाह कहते हैं। यह विवाह उत्तम माना जाता है।

जिस विवाह में, वर ने कन्या को और कन्या ने वर को पसन्द कर लिया हो, एक दूसरे पर मुग्ध हो गये हों, और माता-पिता आदि अभिभावक की स्वीकृति के बिना ही, एक ने दूसरे को स्वी-

कार करलिया हो,किन्तु जिसमें देश-प्रचलित विवाह-विधि पूरी न की गई हो, उसे गन्धर्व-विवाह कहते हैं। यह विवाह,देवविवाह की अपेक्षा मध्यम और राक्षस-विवाह की अपेक्षा अच्छा माना जाता है।

राक्षस-विवाह उसे कहते हैं, जिसमें वर और कन्या, एक दूसरे को समान रूप से न चाहते हों, किन्तु एक ही व्यक्ति दूसरे को चाहता हो,जिसमें,समानता का ध्यान न रखा गया हो, जो किसी एक की इच्छा और दूसरे की अनिच्छा-पूर्वक ज़बरदस्ती या अभिभावक की स्वार्थ-लोलुपता से हुआ हो और जिसमें देश-प्रचलित उत्तम-विवाह-विधि को ठुकराया गया हो, तथा वैवाहिक नियम भंग किये गये हों। यह विवाह, उक्त दोनों विवाहों से निकृष्ट माना जाता है।

पहले बताया जा चुका है, कि कमसेकम आयु का चौथा भाग, यानी २५ और १६ वर्ष, की अवस्था तक तो पुरुष-स्त्री को अखण्ड-ब्रह्मचर्य का पालन करना ही चाहिये। इसके अनुसार विवाह की अवस्था, २५ वर्ष और १६ वर्ष से कम नहीं ठहरती है!

विवाह-योग्य अवस्था।

किसी भी ग्रन्थ में, विवाह-वय और सहवासवय का अलग उल्लेख नहीं पाया जाता, किन्तु विवाह और सहवास के एक ही साथ होने का प्रमाण मिलता है। अर्थात्, वही विवाह-वय और वही सहवास-वय। वैद्यक-ग्रन्थ कहते हैं—

पंचविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे।
समत्वाऽगतवीर्यौ तो जानीयात् कुशलो भिषक्॥

'वीर्य और रज की अपेक्षा से, २५ वर्ष का पुरुष और १६ वर्ष की स्त्री, परस्पर समान हैं; इस बात को कुशल वैद्य ही जानते हैं।'

इसके अनुसार विवाह की अवस्था, पुरुष की २५ वर्ष और स्त्री की १६ वर्ष ठहरती है। इसी अवस्था में स्त्री और पुरुष, इस बात के निर्णय पर भी पहुँच सकते हैं, कि हम पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर सकते हैं या नहीं? अर्थात् विवाह की आवश्यकता का अनुभव, इस अवस्था—या इससे अधिक अवस्था में ही हो सकता है, और जबतक आवश्यकता न जान पड़े, तब तक विवाह करना, धार्मिक और नैतिक, दोनों ही दृष्टि से अपराध है। जैनशास्त्र, पूर्ण ब्रह्मचर्य के प्रतिपादक हैं, इसलिए उनमें, विवाह विषयक विधि-विधान नहीं पाया जाता, लेकिन जैनशास्त्रों में वर्णित कथाओं से विवाह के विषय पर बहुत प्रकाश पड़ता है। जैनशास्त्रों में वर्णित कथाओं से प्रकट है, कि स्त्री-पुरुष का विवाह तभी हो सकता है, जब वे विद्या, कला, आदि सीख चुके हों, और उनके शरीर पर कामवासना का प्रभाव पड़ने लगा हो। औपपातिक सूत्र में कहा है—

नवग सुत्त पडिबोहिए अठारस्स देसी भासा विसारए गीयरत गंधवणट कुसले हयजोही गयजोही रहजोही बाहुजोही बाहुमदी वियालचारी साहस्सीए अलंभोग समत्थेया वि भवई।

'जिनके नव अंग (२ कान २ आँख २ नाक १ जीभ १ त्वचा और १ मन काम भोग के लिए) जाग्रत हुए हैं, अपने-अपने विषय को ग्रहण करने की इच्छा उत्पन्न हो गई है, जो अठारह देश की भाषा का

विशारद है, गाने में, रति-क्रीड़ा में, गन्धर्व-कला में और नाट्य कला में कुशल है, अश्वयुद्ध, गजयुद्ध, रथयुद्ध वाहुयुद्ध और मर्दन करने में साहसी एवं निपुण और काम-भोग भोगने में समर्थ हो गया है (उसका विवाह हुआ ।)'

इस पाठ से पुरुष की विवाह योग्य अवस्था पर वहुत अधिक प्रकाश पड़ता है। भगवती सूत्र में भी विवाह का वर्णन करते हुए पति-पत्नी की समानता किन-वातों में देखी जाती थी, यह बताया गया है। उसमें कहा है—

सरिसयाणं सरित्तयाणं सरिव्वयाणं सरिस लावन्न रूप जोव्वण गुणोववेयाणं विणीयाणं ।

'समान योग्यतावाली, समान त्वचावाली, समान आयुवाली समान लावण्य, रूप यौवन और विनयवाली (कन्या के साथ विवाह हुआ) ।'

इसके अनुसार, विवाह समान युवावस्था में ही हो सकता है। यद्यपि उक्त प्रमाण में समान आयु भी वतलाई गई है, लेकिन उसके साथ ही, समान यौवन भी कहा गया है और ऊपर वैद्यक ग्रन्थ का हवाला देकर, यह भी वताया जा चुका है, कि २५ वर्ष की अवस्था का पुरुष तथा १६ वर्ष की अवस्था की स्त्री, समान हैं। स्थानांग सूत्र की टीका में भी कहा गया है—

पूर्णषोडशवर्षा स्त्री पूर्णविंशेन संगता ।
शुद्धे गर्भाशये मार्गे रक्ते शुक्रेऽनिले हृदि ॥
वीर्यवन्तं सुतं सूते ततो न्यूनाब्दयोः पुनः ।
रोग्यल्पायुरधन्यो वा गर्भो भवति नैव वा ॥

५ वाँ स्थान, २ रा उद्देशा।

'जिसकी अवस्था १६ वर्ष की हो चुकी है, ऐसी स्त्री, जिसकी अवस्था २० वर्ष की हो चुकी है, ऐसे पुरुष से मिलने पर और रक्त, वीर्य, वायु, गर्भाशय-मार्ग तथा हृदय शुद्ध होने पर, वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न करती है। इससे कम अवस्थावाली स्त्री, यदि कम अवस्थावाले पुरुष से संगम करे, तो रोगी, अल्पायुषी तथा आलसी सन्तान उत्पन्न करती है, या गर्भाधान ही नहीं होता।'

यद्यपि यह कहने वाले टीकाकार ने, पुरुष की अवस्था २० वर्ष की ही बताई है, लेकिन स्त्री की अवस्था तो १६ वर्ष ही कहा है। अर्थात् जितने भी प्रमाण दिये गये हैं, उन सबसे स्त्री की विवाह योग्य अवस्था १६ वर्ष से अधिक ही ठहरती है; कम नहीं। इस प्रकार पुरुष का विवाह २० या २५ वर्ष और और स्त्री का विवाह १६ वर्ष की या इससे अधिक अवस्था में ही हो सकता है; कम अवस्था में नहीं। कम अवस्था में विवाह होने पर क्या हानि होती है, यह बात आगे बताई गई है।

विवाह की संख्या।

प्रकृति पर दृष्टिपात करने से, यह बात स्पष्ट है कि एक पुरुष, एक ही स्त्री के साथ और एक स्त्री, एक ही पुरुष के के साथ विवाह कर सकती है; अधिक के साथ नहीं। यद्यपि, जैनशास्त्रों में और अन्य ग्रन्थों में, अधिक विवाह की बातें मिलती हैं, लेकिन अधिक स्त्रियों के साथ विवाह करना, उस समय की संस्कृति थी और उस समय के पुरुष, अधिक स्त्रियों का होना, एक विशेषता और सौभाग्य की बात मानते थे। उस समय की स्त्रियाँ भी, विशेषतः ऐसे ही पुरुष को पसन्द करती थीं, जो वैभवशाली, यशस्वी, वीर और सुन्दर हो। ऐसे पुरुष के, कितनी ही स्त्रियाँ क्यों न

हों, उस समय की स्त्रियाँ, इस बात की अपेक्षा नहीं करती थीं। उस समय की संस्कृति कुछ भी रही हो और अधिक स्त्रियों के साथ विवाह करने का कुछ भी कारण क्यों न रहा हो, लेकिन आजकल ऐसा करना, उचित नहीं कहला सकता। किसी भी व्यक्ति को, आजकल यह अधिकार नहीं है, कि किसी भी वस्तु का उपभोग, परिमाण से अधिक करे। इसके अनुसार किसी पुरुष को अधिक स्त्रियों से और किसी स्त्री को, अधिक पुरुषों से विवाह करना उचित नहीं है।

वैद्यक ग्रन्थों पर दृष्टि देने से भी, यही ज्ञात होता है, कि एक पुरुष की काम-वासना तृप्त करने के लिये एक स्त्री और एक स्त्री की काम वासना तृप्त करने के लिए एक पुरुष, सशक्त तथा पर्याप्त है। न एक पुरुष अधिक स्त्रियों की काम-वासना शान्त कर सकता है; न एक स्त्री अधिक पुरुषों की। इसके अनुसार भी, एक पुरुष का अधिक स्त्रियों से और एक स्त्री का अधिक पुरुषों से विवाह होना अनुचित है।

पति-पत्नी पर उत्तरदायित्व।

विवाहित-जीवन, सुख-पूर्वक निभाने की जिम्मेदारी, स्त्री और पुरुष पर समान रूप से है। हाँ, इसके लिए एक दूसरे का सहायक अवश्य है। फिर भी किसी ऐसे कार्य में-जिसका दुष्प्रभाव अपने आप पर ही नहीं, किंतु भावी सन्तान या दूसरे लोगों पर भी पड़ता है—में सहायता करना, नैतिक सामाजिक और धार्मिक, तीनों ही दृष्टि से अपराध है। उदाहरण के लिए, सन्तान के बालक होने—पर्याप्त आयु की न होने—पर भी, पुरुष का स्त्री को और

स्त्री का पुरुष को प्रसन्न करने के लिए—उसकी इच्छा पूरी करने के लिए-मैथुन में प्रवृत्त होना । ऐसा करने से,एक छोटे बालककी माता गर्भवती हो सकती है; जिससे उस छोटे बालक की बढ़ती मारी जाती है, उसे रोग घेर लेते हैं और गर्भ का बालक भी पुष्ट नहीं होता, किन्तु क्षीण दशा में पहुँचता जाता है । इस प्रकार दोनों ही बालकों का जीवन, कष्टमय हो जाता है; इसलिए ऐसे कार्यों में दम्पति का एक दूसरे की सहायता करना भी अपराध है ।
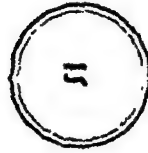
आधुनिक-विवाह ।
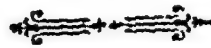
विवाह, कब, किस अवस्था में और किन नियमों के साथ होता है, यह थोड़े में बताया जा चुका है । अब यह देखना है, कि आज-कल की विवाह-प्रथा क्या है, विवाह के नियमादि का पालन किस प्रकार किया जाता है, और यदि इन नियमों की अवहेलना की जाती है, तो क्या हानि होती है । यह देखने के लिए, इस प्रकरण को बाल-विवाह और बेजोड़ विवाह, इन दो भागों में विभक्त करके क्रमशः दोनों पर विचार किया जाता है ।

बालविवाह ।

पूर्व प्रकरण में यह बताया जा चुका है, कि पुरुष और स्त्री की, विवाह-योग्य कम से कम अवस्था २० या २५ और १६ वर्ष है । इसके साथ ही यह भी बताया गया है, कि पुरुष और स्त्री, किस योग्य हों, तब विवाह होता है । आधुनिक समय के विवाहों में, पूर्व-वर्णित विवाह-नियमों की अवहेलना की जाती है । यद्यपि पुरुष-स्त्री, विवाह-बन्धन में तभी बँध सकते हैं, जब वे,

आजीवन ब्रह्मचर्य पालने की अपनी अशक्तता का अनुभव करें, लेकिन आज के विवाहों में, ऐसे अनुभव का समय ही नहीं आने दिया जाता। जैन-समाज में ही नहीं, किन्तु भारत के अधिकांश लोगों में, पुरुष-स्त्री या युवक-युवती के बदले, बालक-बालिका का विवाह किया जाता है। अधिकांश बालक-बालिका के माता-पिता अपने बच्चों का विवाह ऐसी अवस्था में कर देते हैं, जब कि वे बच्चे, विवाह की आवश्यकता, उसकी जवाबदारी और उसका भार समझने के अयोग्य ही नहीं, किन्तु इस ओर से ही अनभिज्ञ, होते हैं। यद्यपि बालक-बालिकाओं की वह अवस्था, खेलने कूदने योग्य है, लेकिन उनके माता-पिता, उन बच्चों के अन्य-अन्य खेल-कूद देखने के साथ ही, विवाह का खेल देखने की लालसा से, अपने दुधमुँहे बच्चों के जीवन का सर्वनाश कर देते हैं।

अभागे भारत में, ऐसे-ऐसे बालक-बालिकाओं के विवाह सुने जाते हैं, जिनकी अवस्था एक वर्ष से भी कम की होती है। अपने बालक या बालिका को दूल्हे या दुलहिन के रूप में देखने के लालायित माँ-बाप, अपनी जवाबदारी और सन्तान की भावी उन्नति को, बाल-विवाह की अग्नि में जला देते हैं। अपने क्षणिक सुख के लिए अपने अबोध बालकों को, भोग की धधकती हुई ज्वाला में, भस्म होने के लिए छोड़ देते हैं और अपनी संतान को उसमें जलते देख कर भी, आप खड़े-खड़े हँसते, तथा यह अवसर देखने को मिला, इसके लिए अपना अहोभाग्य मानते हैं।

आज के अधिकांश लोगों को, यह भी पता नहीं है कि हमारा विवाह कब, किस प्रकार और किस विधि से हुआ था; तथा विवाह के समय, हमें कौन-कौन-सी प्रतिज्ञायें करनी पड़ी

थीं। उन्हें पता भी कहाँ से हो? वे जानें तो कैसे? उनका विवाह तो तब हुआ होगा, जब वे, माँ की गोद में बैठकर दूध पिया करते होंगे, नंगे शरीर, बच्चों के साथ खेला करते होंगे और विवाह तथा वधू किस जानवर का नाम है, अपनी बुद्धि से यह भी न जानते होंगे। उन्हें, घोड़े पर और मण्डप के नीचे उसी प्रकार बैठा दिया गया होगा, जिस प्रकार मन्दिरों में मूर्त्तियें बैठा दी जाती हैं। जब ब्राह्मण लोग, पति-पत्नी के परस्पर के वचनों का पाठ कर रहे होंगे, तब वे, नाई और नाइन की गोदी में सो रहे होंगे। जब उन्हें भाँवरे दिलाई जाती होंगी—यानी फेरे दिये जाते होंगे—तब वे, अपने पैरों से नहीं, किन्तु नाई या नाइन के पैरों से चलते रहे होंगे। ऐसी दशा में, वे, विवाह की बातें जानें और बतावें, तो कहाँ से?

एक सज्जन कहते थे, कि मुझे एक विवाह में सम्मिलित होने का मौक़ा मिला। उस विवाह में, पति और पत्नी, दोनों ही अल्पवयस्क थे। रात के समय जब कि विवाह होता था—कन्या, मण्डप में ही सो गई। लग्न के समय, कन्या की माँ ने कन्या को जगाते हुए कहा कि बेटी! उठ, तेरे लग्न करें। लड़की की अवस्था ऐसी थी, कि वह 'लग्न' शब्द को ही न जानती थी। माँ के जगाने पर, लड़की ने माँ से कहा कि—मुझे तो नींद आती है, तू अपने ही लग्न करले! यह कहकर लड़की फिर सो गई और अन्त में उसका विवाह, निद्रावस्था में ही हुआ।

विचारने की बात है, कि जो बालक-बालिका लग्न या विवाह का नाम भी नहीं जानते, उनका विवाह कर देने पर, वे विवाह-सम्बन्धी नियमों का पालन, किस प्रकार कर सकेंगे? उन्हें जब

अपने विवाह का ही पता नहीं है, तब वे विवाह विषयक प्रतिज्ञाओं को क्या जानें और उनका पालन कैसे करें ? सच्ची बात तो यह है, कि इस प्रकार की अबोध अवस्था में होने वाले विवाह को 'विवाह' कहना ही अन्याय है !

जमाई या बहू के शौक़ीन माँ-बाप, और मालताल के चट्टू बाराती, बालक और बालिका रूपी छोटे-छोटे बछड़ों को सांसारिक जीवन की गाड़ी में जोत कर, आप उस गाड़ी पर सवार हो जाते हैं। अर्थात्, सांसारिक जीवन का बोझ, उन पर बलात् डाल देते हैं। अपनी स्वार्थ-भावना के वश होकर, वे लोग, नीति की बाल-विवाह-विरोधी-बातों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं, उनका उपहास करते हैं और उन्हें पददलित कर डालते हैं। यद्यपि, वे यह सब कुछ करते हैं अच्छा समझकर, हर्ष तथा प्रसन्नता के लिए और अपनी सन्तान को सुखी बनाने के लिए; लेकिन वास्तव में, ऐसे लोग, जिस बाल-विवाह को अच्छा समझते हैं, वह कभी-कभी बहुत ही बुरा; जिसे हर्ष का कारण समझते हैं, वह शोक का कारण; और जिसे सन्तान को सुखी बनाने का साधन मानते हैं, वह सन्तान को दुःखी बनाने का उपाय हो जाता है। कुछ लोग, इस बात को समझते भी होंगे, लेकिन सामाजिक नियमों से विवश होकर, या देखादेखी, बाल-विवाह के घोर पातकमय कार्य में प्रवृत्त होते हैं और सामाजिक नियम तथा अनुकरण करनेवाले स्वभाव के लट्ठ से, बुद्धि को—विवाह करने तक के वास्ते-दूर खदेड़ आते हैं।

नाती-पोते द्वारा अपने जीवन को सुखी माननेवाले लोग, अपनी, संन्तान का बाल्यावस्था में विवाह करके ही सन्तोष

नहीं करते, किन्तु विवाह के समय में ही—या कुछ ही दिन पश्चात् अबोध पति-पत्नी को, उनका उज्ज्वल और सुखमय भविष्य, काला और दुःखमय बनाने के लिए, एक कोठरी में बन्द कर देते हैं। उन बालक-बालिका में, प्रारम्भ से ही ऐसे संस्कार डाले जाते हैं, जिनके कारण, वे अयोग्य अवस्था में ही मैथुन से स्नेह करने लगते हैं। इस प्रकार के संस्कारों में, यदि कुछ कमी रह जाती है, तो उसकी पूर्त्ति, विवाह समय के गीतों से पूरी हो जाती है; और वे बालक-बालिका अपने माता-पिता की पोते-पोती विषयक लालसा पूरी करने के लिए, दुर्विषय-भोग के अथाह सागर में अशक्त होते हुए भी कूद पड़ते हैं।

धार्मिक दृष्टि से बाल-विवाह।

कुछ लोगों ने, बालविवाह की पुष्टि के लिए, धर्म की भी ओट ले रखी है और बाल-विवाह न करना, धार्मिक अपराध बतलाया जाता है। लेकिन जो लोग, बाल-विवाह को धार्मिक रूप देते हैं, उन्हीं के ग्रन्थों में लिखा है—

> *अज्ञात पति मर्यादामज्ञातपति सेवनाम्।*
> *नो द्वाहयेत्पिता बाला, म ज्ञातां धर्म शासनम्॥*
>
> हेमाद्रि।

'पिता, ऐसी कम अवस्था वाली कन्या का विवाह कदापि न करे, जो, पति की मर्यादा, पति की सेवा और धर्म-शासन को न जानती हो।'

इसके सिवा, आवश्यक ब्रह्मचर्य के विषय में, मनुस्मृति का जो प्रमाण दिया गया है, उससे भी बालविवाह का निषेध ही होता है। बालविवाह न करने को धार्मिक अपराध बतानेवाले

लोग, 'अष्ट वर्षा भवेद् गौरी' आदि का जो एक पाठ प्रमाण रूप बताते हैं, मनुस्मृति और हेमाद्रि के उक्त प्रमाणों से, बाल-विवाह का विधान करनेवाला वह पाठ, प्रेक्षित ठहरता है। जान पड़ता है, कि यह पाठ उस समय बनाया गया है, जब, भारत में मुसलमानों का जोर था और वे लोग, स्त्रियों और विशेषतः अविवाहित-स्त्रियों का बलात् अपहरण करते थे। मुसलमानों से स्त्रियों की रक्षा करने के लिए ही, सम्भवतः यह पाठ बनाया गया था; क्योंकि, मुसलमान लोग, विवाहित-स्त्रियों की अपेक्षा अविवाहित-स्त्रियों का अपहरण अधिक करते थे। इसलिए विवाह हो जाने पर, स्त्रियें, इस भय से बहुत कुछ मुक्त समझी जाती थीं।

यद्यपि, मुसलमानी काल में, बाल-विवाह की प्रथा, प्रचलित अवश्य हो गई थी, लेकिन आजकल की भाँति, अल्पवयस्क पति-पत्नी को, विवाह समय में ही सहवास नहीं कराया जाता था। किन्तु, सहवास का समय, विवाह-समय से भिन्न होता था। आज, मुसलमानी काल की-सी स्थिति न होने पर भी, बाल-विवाह प्रचलित है और सहवास की भी कोई निश्चित अवस्था नहीं है।

तात्पर्य यह, कि बाल-विवाह, किसी भी धर्म के शास्त्रों में, उचित या आवश्यक नहीं बताया गया है; किन्तु ऐसे विवाहों का, निषेध ही किया गया है।

बाल-विवाह द्वारा, प्राचीन विवाह-नियम भंग करने वालों

को, प्रकृति-दत्त दण्ड भी भोगना पड़ता है। प्रकृति, अपने नियम-भंग करने वाले के साथ, किंचित् भी नर्मी का व्यवहार नहीं करती, किन्तु दण्ड देती ही है। अतः अब यह देखते हैं, कि बाल-विवाह के कारण, प्रकृति द्वारा कौनसा दण्ड मिलता है; यानी बाल-विवाह से क्या-क्या हानि होती हैं।

बाल-विवाह से हानि।

युवावस्था से पूर्व, स्त्री-पुरुष का रज-वीर्य, अपरिपक्व रहता है। बाल-विवाह और समय से पूर्व के दाम्पत्य-सहवास से, अपरिपक्व रज-वीर्य नष्ट होता है। अपरिपक्व रज-वीर्य नष्ट होने से, शरीर की, रस से लेकर मज्जातक सभी धातुएँ शिथिल हो जाती हैं; जिससे शारीरिक विकास रुक जाता है। सौन्दर्य, उत्साह, प्रसन्नता और अंगों की शक्ति घट जाती है। आयुर्बल भी कम हो जाता है। रोग-शोक घेरे रहते हैं। असमय में ही दाँत गिर जाते हैं, बाल पकने लगते हैं, तथा आँखों की ज्योति क्षीण हो जाती है। थोड़े ही दिनों में, पुरुष नपुंसक और स्त्री, स्त्रीत्व-रहित हो जाती है। इस प्रकार, पति-पत्नी का जीवन, दुःखमय हो जाता है।

रही सन्तानोत्पत्ति की बात। इस विषय में, वैद्यक-ग्रन्थ कहते हैं—

ऊन षोडश वर्षायाम् अप्राप्तः पंचविंशतिम्।
यद्या धत्ते पुमान् गर्भ कुक्षिस्थः स विपद्यते॥
जातो वा न चिरञ्जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्त बालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥

सुश्रुत

'यदि सोलह वर्ष से कम अवस्थावाली स्त्री में, २५ वर्ष से कम अवस्थावाला पुरुष गर्भाधान करे, तो वह गर्भ, उदर में ही विपत्ति को प्राप्त होता है। यदि उस गर्भ से सन्तान उत्पन्न भी हुई, तो जीवित नहीं रहती है और यदि जीवित भी रही, तो अत्यन्त दुर्बल अंगवाली होती है, इसलिए, कम आयु वाली स्त्री में. कभी गर्भाधान न करना चाहिए।'

इस प्रकार, सन्तानोत्पत्ति के लिए भी वालविवाह घातक ही है। इंगलेण्ड में, मनुष्यों की औसत-आयु ५१ वर्ष और वालमरण प्रतिसहस्र ७५ है; लेकिन भारत के मनुष्यों की औसत आयु केवल २३ वर्ष और वाल-मरण प्रतिसहस्र १९४ है। इस महान् अन्तर का कारण यही है, कि इङ्गलेण्ड में, वाल-विवाह की घातक प्रथा नहीं है, लेकिन भारत में, इस प्रथा ने, अधिकांश लोगों के हृदय में अपना घर वना लिया है। पौत्रादि के इच्छुक लोग, अपने वालक-वालिका का विवाह करते तो हैं पोते-पोती के सुख की अभिलाषा से, लेकिन असमय में उत्पन्न सन्तान, मृत्यु के मुख में जाकर, ऐसे लोगों को और विलाप करने के लिए छोड़ जाती है, अपने माता-पिता को अशक्त वना जाती है, तथा इस प्रकार उन्हें अपने दुष्कृत्यों का दण्ड दे जाती है। इंग्लेण्ड की अपेक्षा, भारत के लोगों की औसत-आयु कम होने का कारण, वालविवाह द्वारा होनेवाले रोग और असमय के वीर्यपात से होने वाली कमजोरी है। इसी घातक प्रथा के कारण, अनेक स्त्रियें, प्रसवकाल में ही परलोक को प्रस्थान कर जाती हैं, या सदा के लिए रोग-ग्रस्त हो जाती हैं और फिर रोगी सन्तान उत्पन्न करके, भावी सन्तति के लिए काँटे विछा जाती हैं।

वाल-विवाह के विषय में गांधीजी लिखते हैं, कि 'हिन्दुस्तान को छोड़कर और किसी भी देश में, बचपन से ही विवाह की वातें, वालकों को नहीं सुनाई जातीं। यहाँ तो, माता-पिता की एक ही अभिलाषा रहती है—लड़के का विवाह कर देना। इससे, असमय में ही बुद्धि और शरीर का ह्रास होता है। हम लोगों का जन्म, प्रायः बचपन के व्याहे माता-पिता से हुआ है। हमें ऐसा लोकमत बनाने की जरूरत है, कि जिसमें वाल-विवाह असम्भव हो जावे। हमारी अस्थिरता, कठिन और अविरल श्रम से अनिच्छा, शारीरिक अयोग्यता, शान से शुरु किये गये हमारे कामों का बैठ जाना और मौलिकता का अभाव-इत्यादि, इन सब के मूल में, मुख्यतःहमारा अत्यधिक वीर्यनाश ही है।'

गांधीजी, आगे लिखते हैं कि—'जो माँ-बाप, अपने बच्चों की सगाई बचपन में ही कर देते हैं, वे, उन बच्चों को बेंचकर घातक बनते हैं। अपने बच्चों का लाभ देखने के बदले, वे अपना ही अन्ध-स्वार्थ देखते हैं। उन्हें तो, आप बड़ा बनना है, अपनी जाति-विरादरी में नाम कमाना है, लड़के का व्याह करके तमाशा देखना है। लड़के का हित देखें, तो उसका पढ़ना लिखना देखें, उसका जतन करें, उसका शरीर बनावें। घर गृहस्थी की खटखट में डाल देने से बढ़कर, उसका दूसरा कौनसा बड़ा अहित हो सकता है?'

यदि यह कहा जावे, कि धार्मिकता की दृष्टि से विवाह तो बचपन में कर दिया जाता है, लेकिन सहवास नहीं होता है; तो पहले तो यह कथन, सर्वथा नहीं तो बहुत अंश में गलत है। क्योंकि, प्रायः विवाह समय में ही सहवास होना सुना जाता है।

कदाचित उस समय सहवास न होता हो, तो फिर बचपन में विवाह किस दृष्टि से किया जाता है ? ऐसे विवाह का विधान तो, किसी भी धर्म के शास्त्र नहीं करते और ऐसे विवाह प्रत्यक्ष ही हानिप्रद हैं। बचपन में व्याहे गये पति-पत्नी की अवस्था में, विशेष अन्तर नहीं होता। जिस समय, कन्या युवती मानी जाती है, उस समय उसका पति, युवावस्था में पदार्पण भी नहीं कर पाता। वह युवती है, इस लोकलाज के भय से, माता-पिता की दृष्टि में, अपने अल्पवयस्क पुत्र के लिए स्त्री-सहवास आवश्यक हो जाता है। इसप्रकार, उस हानि से बचा नहीं जा सकता, जो बाल-विवाह से होती है। इसके सिवा, बचपन में विवाहे गये पति-पत्नी, आगे चलकर कैसे कैसे स्वभाव के होंगे, उनके रूप, गुण, शक्ति आदि में कैसी विषमता होगी, इसे कोई नहीं जान सकता। पति-पत्नी में विषमता होने से, उनका जीवन भी क्लेशमय बीतता है।

बचपन में विवाह होने से, विधवाओं की भी संख्या बढ़ती है। समाज में, एक-एक, दो-दो और चार-चार वर्ष की अवस्थावाली बाल-विधवाएँ दिखाई देना, बाल-विवाह का ही कटुफल है। चेचक आदि बीमारी से, बालक-पति की तो मृत्यु हो जाती है और बालिका-पत्नी, वैधव्य भोगने के लिए रह जाती है। जिस पति से, उस अबोध-बालिका ने कोई सुख नहीं पाया है, हृदय में जिसकी स्मृति का कोई साधन नहीं है, जिसके नाम पर वैधव्य भोगने का कोई कारण नहीं है, उस पति के नाम पर, एक बालिका से वैधव्य पालन कराने का कारण, बालविवाह ही है। ऐसी बाल-विधवा, अपनी वैधव्यावस्था किस सहारे से

व्यतीत कर सकेगी, यह देखने की कोई आवश्यकता भी नहीं समझता।

तात्पर्य यह, कि सहवास न होने पर भी, बालविवाह हानि-प्रद ही है। विवाह होजाने पर, बालक पति-पत्नी, ज्ञान और विद्या से भी बहुत कुछ पिछड़े रह जाते हैं, तथा एक दूसरे के स्मरण से, वीर्य में दोष पैदा होता है। इसलिए बाल-विवाह त्याज्य है।

बेजोड़-विवाह।

बेजोड़-विवाह भी, पूर्व की विवाह-प्रथा और आज की विवाह-प्रथा में भिन्नता बताता है। यद्यपि विवाह में, वर और कन्या की पूर्व-वर्णित समानता देखना आवश्यक है, लेकिन आज के अधिकांश विवाहों में, इस बात का ध्यान बहुत कम रखा जाता है। आज के बेजोड़-विवाहों को देखकर, यदि यह कहा जावे, कि वर या कन्या के साथ नहीं, किन्तु धन-वैभव या कुल के साथ विवाह होता है, तो कोई अत्युक्ति न होगी। यद्यपि संसार के प्रत्येक प्राणी, अपनी समानतावाले को ही अधिक पसन्द करते हैं, और विवाह में तो यह बात विशेष ध्यान में रखने योग्य है, लेकिन आजकल के बहुत से विवाह, ऊँट और बैल की जोड़ी—से होते हैं। ऐसे विवाह, विशेषतः धन या कुल के कारण होते हैं। अर्थात्, या तो धन के लोभ से बेजोड़-विवाह किया जाता है, या कुल के लोभ से। बेजोड़-विवाह में, धन का लोभ दो प्रकार का होता है। एक तो यह कि लड़के या लड़की

की ससुराल धनवान होगी, इसलिए बड़ी अवस्थावाली कन्या के साथ छोटी अवस्थावाले पुरुष का, या छोटी अवस्थावाली कन्या के साथ बड़ी अवस्थावाले पुरुष का विवाह कर दिया जाता है। दूसरे, कन्या या वर के बदले में द्रव्य प्राप्त होगा, इसलिए भी ऐसे विवाह कर दिये जाते हैं। इसीप्रकार, कुल के लिए भी बेजोड़-विवाह किये जाते हैं; अर्थात् हमारी लड़की या हमारे लड़के की ससुराल इस प्रकार की घरानेदार या कुलवान होगी, इसलिए भी बेजोड़-विवाह किये जाते हैं।

कई माता-पिता, लोभ के वश होकर, अपनी सन्तान का हिताहित नहीं देखते और उसका विवाह, ऐसे वर या ऐसी कन्या के साथ कर देते हैं, जो बेजोड़ और एक दूसरे की अभिरुचि के प्रतिकूल होते हैं। कई माता-पिता, अपनी अबोध कन्या को, वृद्ध तक के गले मढ़ देते हैं। विशेषतः वे धन के लिए ही ऐसा करते हैं; यानी कन्या के बदले में द्रव्य लेने के लिए। द्रव्य-लालसा के आगे, वे इस बात को विचारने की भी आवश्यकता नहीं समझते, कि इन दोनों में परस्पर मेल रहेगा या नहीं, तथा हमारी कन्या, कितने दिन सुहागिन रह सकेगी ! उन्हें तो केवल द्रव्य से काम रहता है, उनकी तरफ से कन्या की चाहे कैसीही दुर्दशा क्यों न हो !

विवाह और पत्नी के इच्छुक वृद्ध भी यह नहीं देखते, कि मैं एक तरुणी के योग्य हूँ या नहीं और एक तरुणी, मुझे पसन्द करेगी या नहीं ! विद्वानों का कथन है—

वृद्धस्य तरुणी विषम् ।

—सूक्ति ।

'वृद्ध को, तरुणी विष के समान बुरी लगती है।'

इसका उल्टा यह होगा, कि तरुणी को वृद्ध, विष के समान बुरा लगता है। जब पति-पत्नी एक दूसरे को विष के समान बुरे लगते हों, तब उनका जीवन सुखमय कैसे बीत सकता है? लेकिन इस बात पर, न तो धन-लोभी माता-पिता ही विचार करते हैं, न स्त्री-लोभी वृद्ध और न भोजन-लोभी बाराती या पंच। केवल धन के बल से, एक वृद्ध उस तरुणी पर अधिकार कर लेता है, जिसका अधिकारी एक युवक हो सकता था और इसी प्रकार माता-पिता की धन-लोलुपता से, एक तरुणी को अपना वह जीवन वृद्ध के हवाले कर देना पड़ता है, जिस जीवन को वह किसी युवक के साथ रहकर विताने की अभिलाषा रखती थी। वृद्ध-विवाह के विषय में, गुलिश्ताँ में आई हुई एक कहानी इस स्थान के लिए उपयुक्त होने से दी जाती है।

वृद्ध-विवाह पर एक कहानी।

एक वृद्ध अमीर की स्त्री का देहान्त हो गया। अमीर के दोस्तों ने अमीर से दूसरा विवाह करने के लिए कहा। अमीर ने उत्तर दिया, कि मैं किसी बुड्ढी-स्त्री के साथ विवाह नहीं कर सकता, मुझे बुड्ढी-स्त्री पसन्द नहीं। दोस्तों ने उत्तर दिया, कि आपको बुड्ढी-स्त्री के साथ विवाह करने के लिए कौन कहता है! आप तरुणी के साथ विवाह कीजिये। हम, आपके लिए तरुणी की तलाश कर देंगे। दोस्तों की बात सुनकर, वृद्ध-अमीर ने कहा कि—यह आप लोगों की महरबानी है, लेकिन मैं पूछता हूँ, कि जब मुझ बुड्ढे को बुड्ढी स्त्री पसन्द नहीं है, तो क्या वह तरुण-स्त्री, मुझ बुड्ढे को पसन्द करेगी? यदि नहीं, तो फिर जबरदस्ती से क्या

लाम ! अमीर की बात सुन कर, दोस्तों को शर्मिन्दा होना पड़ा और उन्होंने, अमीर के विवाह की बात छोड़ दी।

वृद्ध पुरुष के साथ तरुण-स्त्री के विवाह के समान ही, धन या कुल के लोभ से बालक-पुरुष के साथ तरुणी, या तरुण पुरुष के साथ बालिका भी विवाह दी जाती है। ये समस्त विवाह, बेजोड़ हैं। ऐसे विवाह, समाज में भयंकर हानि फैलानेवाले, भावी सन्तति का जीवन दुःखप्रद बनानेवाले और पारलौकिक जीवन को कंटकाकीर्ण करनेवाले हैं।

बालिका-युवक और बालक-युवती विवाह।

बेजोड़-विवाह से होनेवाली समस्त हानियों का वर्णन करना शक्ति से परे की बात है, फिर भी, संक्षिप्त में कुछ हानियें बताई जाती हैं। बेजोड़ विवाह से कुल की हानि होती है। विधवाओं की संख्या बढ़ती है, जिससे व्यभिचार वृद्धि के साथ ही, आत्म-हत्या, भ्रूण-हत्या आदि होती हैं और अन्त में अनेक विधवाएँ वेश्या बनकर अपना जीवन घृणित रीति से बिताने लगती हैं। समाज में स्त्रियों की कमी होने से, कई युवक अविवाहित रह जाते हैं और दुराचारी बन जाते हैं। बेजोड़ पति-पत्नी से उत्पन्न सन्तान, भी अशक्त, अल्पायुषी और दुर्गुणी होती है।

जैन शास्त्रों में, ऐसा एक भी प्रमाण मिलता, जो बेजोड़-विवाह का पोषक हो। अन्य ग्रन्थों में भी, बेजोड़-विवाह का निषेध ही किया गया है। जैसे—

कन्यां यच्छति वृद्धाय नीचाय धन-लिप्सया।
कुरूपाय कुशीलाय स प्रेतो जायते नरः॥

स्कन्दपुराण

'जो पिता अपनी कन्या, वृद्ध, नीच, धन के लोभी, कुरूप, और कुशील पुरुष को देता है, वह प्रेत-योनि में जन्म लेता है।'

इसी प्रकार कन्या-विक्रय के विषय में कहा है—

अल्पेनापि हि शुल्केन पिता कन्यां ददाति यः ।
रौरवे बहु वर्षाणि पुरीषं मूत्र मश्नुते ॥

आपस्तम्ब स्मृति ।

'कन्या देकर बदले में, थोड़ा भी धन लेनेवाला पिता, बहुत वर्ष तक रौरव नरक में निवास करके विष्टा-मूत्र खाता रहता है।'

आधुनिक विवाह-प्रथा की, और भी बहुत समालोचना की जा सकती है, लेकिन विस्तार-भय से ऐसा नहीं किया गया। यहां तो संक्षिप्त में केवल यह बताया गया है, कि आजकल की विवाह-प्रथा, पहले की विवाह-प्रथा से बिलकुल भिन्न है और इस भिन्नता से अनेक हानियें हैं।

विवाह में अपव्यय।

अधिकांश आधुनिक विवाहों में, अपव्यय भी सीमातीत होता है। आतिशबाजी, रण्डी, बाजे और ज्ञातिभोजनादि में इतना अधिक द्रव्य उड़ाया जाता है, कि जितने द्रव्य से, सैंकड़ों-हजारों लोग, वर्षों तक पल सकते हैं। धनिक लोग, विवाह के अपव्यय द्वारा, गरीबों के जीवन-मार्ग में काँटे बिछा देते हैं। धनिकों के आडम्बर-पूर्ण विवाह को आदर्श मानकर, अनेक ग़रीब कर्ज़ लेकर विवाह का आडम्बर करते हैं और धनिकों द्वारा स्थापित इस

आदर्श की कृपा से अपने जीवन को, चिरकाल के लिए दुःखी बना लेते हैं। विवाह के अपव्यय में धन की ही हानि नहीं होती, किन्तु कभी-कभी जन की भी हानि हो जाती है। बहुत से लोग, खाने-पीने की अनियमितता से बीमार होकर मर जाते हैं और बहुत-से अतिशबाजी की अग्नि में झुलस कर, विवाह की भेंट हो जाते हैं। कई युवक, विवाह में आई हुई वेश्याओं के ही शिकार बन जाते हैं। इस प्रकार आजकल की विवाह-पद्धति द्वारा अपना ही सर्वनाश नहीं किया जाता, किन्तु दूसरों के सर्वनाश—का भी कारण उत्पन्न कर दिया जाता है।

आजकल की विवाह-प्रथा पर से एक प्रश्न।

आजकल समाज के सन्मुख विधवा-विवाह का जो प्रश्न उपस्थित है, उसके मूल कारण, बाल-विवाह, बेजोड़-विवाह और विवाह की खर्चीली पद्धति ही हैं। बाल-विवाह और बेजोड़-विवाह के कारण, एक ओर विधवाओं की संख्या तो बढ़ जाती है, और दूसरी ओर बहुत से पुरुष अविवाहित ही रह जाते हैं। इसीप्रकार, विवाह की खर्चीली पद्धति के कारण भी, अनेक गरीब परन्तु योग्य युवक अविवाहित रह जाते हैं। क्योंकि उनके पास, वैवाहिक आडम्बर करने को द्रव्य नहीं होता। यदि बाल-विवाह और बेजोड़-विवाह बन्द हो जावें, विवाह में अधिक खर्च न हुआ करे, तो विधवाओं और अविवाहित पुरुषों की बढ़ी हुई संख्या न रहने पर सम्भवतः विधवा-विवाह का प्रश्न आपही हल हो जावे।

सारांश यह कि पूर्व समय में, विवाह तब किया जाता था,

जब पति-पत्नी, सर्वविरति-ब्रह्मचर्य पालने में असमर्थ होते थे।

प्राचीन और आधुनिक विवाहों में प्रधान अन्तर।

अर्थात्, विवाह कोई आवश्यक कार्य नहीं माना जाता था; लेकिन आजकल, विवाह आवश्यक कार्य माना जाता है। जीवन की सफलता, विवाह में ही समझी जाती है। जबतक लड़के-लड़की का विवाह न हो जावे, तब-तक वे दुर्भागी समझे जाते हैं। इसी कारण, आवश्यकता और अनुभव के बिना ही, विवाह कर दिया जाता है और वह भी बेजोड़ तथा हजारों लाखों रुपये व्यय करके धूमधाम के साथ। पूर्व समय की विवाह-प्रथा, समाज में शान्ति रखती थी, समाज को दुराचार से बचाती थी और अच्छी सन्तान उत्पन्न करके, समाज का हित साधन करती थी। आजकल की विवाह-प्रथा, इसके विपरीत कार्य करती है। बाल-विवाह, बेजोड़-विवाह और विवाह की खर्चीली पद्धति, समाज में अशान्ति उत्पन्न करती है, लोगों को दुराचार में प्रवृत्त करती है और रुग्ण एवं अल्पायुषी सन्तान द्वारा, समाज का अहित करती है।

वैवाहिक विषय के वर्णन पर से कोई यह कह सकता है, कि साधुओं को इन सांसारिक बातों से क्या मतलब और वे

शंका समाधान

ऐसी बातों के विषय में उपदेश क्यों दें? इसका उत्तर यह है, कि यद्यपि इन सांसारिक बातों से साधुलोग परे हैं, लेकिन साधुओं का धार्मिक-जीवन नीतिपूर्ण संसार पर ही अवलम्बित है। यदि संसार में सर्वत्र अनीति आ जावे, तो धार्मिक जीवन के लिए स्थान भी नहीं रह सकता। इसी दृष्टिकोण से—विवाह की विधि बताने के लिए ही—शास्त्र–

कथा में, विवाह-बंधन में जुड़नेवाले स्त्री-पुरुष की समानता आदि का वर्णन है। यह बात दूसरी है, कि उनमें बालविवाह, असमय के सहवास आदि का निषेध नहीं है, लेकिन उस समय इसप्रकार की कुप्रथाएँ थीं ही नहीं, इसलिए इस प्रकार के उपदेश की भी आवश्यकता न थी। अन्यथा, पूर्ण-ब्रह्मचर्य का ही विधान करनेवाले होने पर भी, जैन-शास्त्र ऐसे अपूर्ण नहीं हैं, कि उनमें सांसारिक-जीवन की विधि पर-कथाओं द्वारा-प्रकाश न डाला गया हो। 'सरीसा वया, सरीसातया' आदि पाठ इसी बात के द्योतक हैं, कि विवाह समान युवावस्था में होता था।
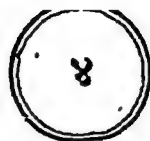
देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत ।
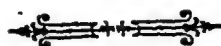
मातृवत्परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टवत् ।
आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति ॥

'जो मनुष्य, पराई स्त्री को माता के समान जानता है, पराये धन को मिट्टी के ढेले के समान मानता है और सब प्राणियों को अपने ही समान देखता है, वही यथार्थ देखनेवाला है।'

ऊपर यह तो कहा जा चुका है, कि जो पुरुष या स्त्री, सर्व-विरति ब्रह्मचर्य पालन करने में समर्थ हैं, उन्हें विवाह न करना चाहिए और जो ऐसा करने में असमर्थ हैं, उनके लिए विवाह करना, अनुचित भी नहीं माना जाता। अब देखना यह है, कि विवाह करके भी ब्रह्मचर्य का पालन किया जा सकता है या नहीं और किया जा सकता है, तो किस रूप में !

विवाहित जीवन में ब्रह्मचर्य

प्रत्येक बात का, ऊँचे से ऊँचा और नीचे से नीचा आदर्श रहता ही है। मनुष्य मात्र से, एक ही आदर्श की ओर चलने की आशा करना, उचित नहीं है; क्योंकि सब लोगों में, समान बुद्धि, शक्ति, साहस, धैर्य आदि नहीं होते। इस बात को दृष्टि

में रखकर, जैन शास्त्रों ने ब्रह्मचर्य का भी ऊँचे से ऊँचा और नीचे से नीचा, ऐसे दोनों ही प्रकार के आदर्श बताये हैं। ब्रह्मचर्य के सबसे ऊँचे आदर्श का नाम, सर्वविरति-ब्रह्मचर्य है और उससे नीचे आदर्श का नाम, देशविरति-ब्रह्मचर्य है। देशविरति ब्रह्मचर्य, अर्थात् आंशिक ब्रह्मचर्य।

विवाहित पुरुष-स्त्री, देशविरति-ब्रह्मचर्यव्रत का पालन भली प्रकार कर सकते हैं। बल्कि, देशविरति ब्रह्मचर्य को स्वीकार करना, धार्मिक एवं नैतिक दृष्टि से प्रत्येक पुरुष स्त्री का कर्तव्य है। देशविरति ब्रह्मचर्य को स्वीकार करने से, विवाहित स्त्री-पुरुष के सांसारिक कामों में, किसी प्रकार की बाधा नहीं आती। क्योंकि सर्वविरति ब्रह्मचर्य में, मैथुनाङ्गों सहित सब प्रकार के मैथुन का मन, वचन और काय से, करने, कराने और अनुमोदन करने का त्याग लिया जाता है, लेकिन देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत का आदर्श, इससे बहुत नीचा है। देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार करनेवाला जो प्रतिज्ञा करता है, वह इस प्रकार होती है—

सदार संतोसिए अवसेसं मेहुणं पचक्खामि जाव-जीवाए (देवदेवीसम्बन्धि) दुविहं तिविहेणनकरेमि नकारवेमि-मणसा वयसा कायसा मनुष्यमनुष्यणी एवं तिर्यचतिर्यचणी सम्बन्धी एकविहं एगविहेणं नकरोमि कायसा—

इस प्रतिज्ञा के अनुसार, देशविरति ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार करनेवाले पुरुष या स्त्री के लिए, सांसारिक काम न रुकने योग्य बहुत गुंजायश रह जाती है। इसलिए, विवाहित पुरुष-स्त्री को,

देशविरति ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार करना एवं पालन करना चाहिए।

पुरुष और स्त्री के भेद से, देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत का नाम, स्वदार सन्तोषव्रत और स्वपति सन्तोप व्रत है। इन दोनों व्रत की अलग-अलग व्याख्या की जाती है।

स्वदार-सन्तोष व्रत।

व्याख्या

जिस ब्रह्मचर्य व्रत में, स्वदार का आगार रखा जाता है, उसे स्वदार-सन्तोष व्रत कहते हैं। इस व्रत को स्वीकार करने में, उन सभी स्त्रियों से मैथुन करने का त्याग करना पड़ता है,जो स्व की नहीं हैं। जो स्त्री स्व (खुद) की कहलाती है, उसके सिवा अन्य सभी स्त्रियें परदार हैं और यह व्रत स्वीकार करने में, ऐसी सभी स्त्रियों से मैथुन करने का त्याग लिया जाता है। इस प्रकार, गृहस्थ पुरुष जिस देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत को स्वीकार करते हैं,उस का नाम स्वदार-सन्तोष व्रत है और इस व्रत को स्वीकार करने में, परदार का विरमण (त्याग) किया जाता है।

लाभ

स्वदार-सन्तोष व्रत का, बहुत माहात्म्य है। शास्त्रकारों का कथन है, कि इस व्रत को स्वीकार करनेवाले पुरुष को कामेच्छा सीमित हो जाती है, जिससे वह असीम कामेच्छा के पाप से बच जाता है। परस्त्री-सेवन का त्याग करनेवाले पुरुष का चित्त, परस्त्री की ओर जाता ही नहीं, जिससे, उसके द्वारा परस्त्री-सेवन का पाप नहीं

होता। दुराचारी की अपेक्षा उसका शरीर, बलवान मेधावी और दीर्घायुषी होता है। उसकी सन्तान भी ऐसी ही होती है। अन्य ग्रन्थकारों ने भी, इस व्रत का बहुत माहात्म्य बताया है। पुराणों के रचयिता व्यासजी कहते हैं—

स्वदारे यस्य सन्तोषः परदार निवर्तनम्।
अपवादोऽपितो यस्य तस्य तीर्थ फलं गृहे॥

व्यास स्मृति।

'निरपवाद स्वदार में सन्तोष करने और पराई स्त्री से निवर्तनेवाला पुरुष, निन्दा से बच जाता है, तथा घर में ही उसे तीर्थ का फल मिल जाता है।'

स्वदार-सन्तोष व्रत स्वीकार करने से, दाम्पत्य-प्रेम में वृद्धि होती है। पति-पत्नी में कलह नहीं होता। लोक में निन्दा नहीं होती, किन्तु विश्वासपात्र माना जाता है। धन, वैभव, बल,बुद्धि, यश, कीर्ति, निर्भयता और सद्गुण सुरक्षित रहते हैं। परलोक में भी वह उन दुःखों से बचा रहता है,जो परदार—गामी को प्राप्त होते हैं।

परदार—गमन निन्दा।

स्वदार-सन्तोष व्रत रहित-यानी परदार-गामी-पुरुष, दुराचारी कहाता है और वह, अपनी स्त्री को भी सन्तुष्ट रखने में असमर्थ रहता है। ऐसे पुरुष का विश्वास, न स्व-स्त्री ही करती है, न पर-स्त्री ही। स्व-पत्नी से सदा कलह बना रहता है। घर, दुःखमय हो जाता है। संन्तान, या तो होती नहीं और होती भी है, तो रुग्ण, अल्पायुषी और दुराचारिणी। क्योंकि, माता-पिता के सद्गुण-दुर्गुण का प्रभाव, सन्तान पर पड़ता ही है।

परदार गामी पुरुष की, लोक में निन्दा होती है। कोई उस-का विश्वास नहीं करता। सब लोग, यहाँ तक कि अपनी स्त्री भी, घृणा की दृष्टि से देखती है। उसका जीवन, कलंकित, दूषित एवं पापपूर्ण रहता है। पर-स्त्री की इच्छा रखनेवाले पुरुष की, संचित कीर्ति भी नष्ट हो जाती है। यश, उसके पास भी नहीं फटकता। धन-वैभव, उसे त्याग देते हैं। बल, सौन्दर्य, साहस और धैर्य का उसमें अभाव-सा हो जाता है। वह, दुर्गुणों और पातकों का घर बन जाता है। उसमें से, सद्गुण निकल जाते हैं। भय, क्रोध, रोग, शोक, अपमान, दीनता आदि समस्त दुःख उसे घेर लेते हैं। कभी-कभी तो, मृत्यु का भी आलिंगन करना पड़ता है। परदार-गामी का मन, सदैव कलुषित बना रहता है, जिससे नीति और धर्म से निषिद्ध कार्य, सदा करता ही रहता है। इसप्रकार, उसका इहलौकिक जीवन दुःखमय बन जाता है और परलोक में उसे नरक की घोर से घोर वेदना सहनी पड़ती है।

पर-स्त्री-सेवन की बुराइयाँ बताते हुए, गाँधी जी लिखते हैं कि 'जहाँ पर स्त्री गमन न हो, वहाँ पर प्रतिशत पचास डाक्टर बेकार हो जावेंगे। पर-स्त्री-गमन से होने वाले रोगों की दवा-इयें भी ऐसी जहरीली होती हैं, कि यदि उन दवाइयों से एक रोग का नाश मालूम होने लगता है, तो दूसरे रोग घर कर लेते हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी चल निकलते हैं।'

गाँधीजी के कथन का अभिप्राय यह है, कि पर-स्त्री-सेवन से, रोग और अशक्तता का ऐसा आधिक्य हो जाता है, कि जिस का फल भावी सन्तति को भी भोगना पड़ता है। वे आगे कहते

हैं कि 'मनुष्य के सामाजिक जीवन का केन्द्र, एक-पत्नीव्रत है।' इसलिए, स्वदार सन्तोष व्रत स्वीकार करके, पर-स्त्री का त्याग करना ही लाभप्रद है। अन्य ग्रन्थकार भी कहते हैं—

> दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
> दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥
> नहीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन दृश्यते।
> यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥
>
> मनुस्मृति।

'दुराचारी पुरुष, लोक में निन्दित होता है, सदा दुःखी, रोग ग्रस्त और अल्पायुषी होता है। इस संसार में, पुरुष का आयुर्बल क्षीण करने वाला ऐसा कोई भी कार्य नहीं है, जैसा कि पराई स्त्री के साथ रमण करना है।'

परदार-गमन से, केवल आयुर्बल ही क्षीण नहीं होता, किन्तु बल, साहस, धन-वैभव आदि भी नष्ट हो जाते हैं। कैसा भी बलवान हो, कैसा भी वैभवशाली हो और कैसा भी साहसी हो, लेकिन यदि उसमें पर-स्त्री चाहने का रोग है, तो उसका समस्त बल, वैभव, और साहस, गर्म तवे पर गिरी हुई जल की बूंद के समान नष्ट हो जाता है। पराई स्त्री की इच्छा करने वाला, अपनी ही हानि नहीं करता, किन्तु अपने कुल परिवार और मित्रों की भी हानि करता है। राजा रावण में, बल की कमी नहीं थी, वैभव भी खूब था और साहस भी पर्याप्त था, लेकिन वह सदाचारी-स्वदार सन्तोषी न था, इसलिए उसका बल, वैभव तथा साहस किसी काम न आया और परिवार सहित नष्ट

हो गया। यही बात मणिरथ, पद्मोतर आदि के लिए भी है। इनमें भी यदि सदाचार का अभाव न होता, तो इनके नष्ट होने का भी कोई ऐसा निन्द्य कारण न था। बुद्ध-ग्रन्थ धम्मपद में लिखा है, कि 'जो अविचारी, पर-स्त्री की अभिलाषा करता है, उसे चार फल मिलते हैं—(१) अपयश, (२) निद्रानाशक चिन्ता (३) दण्ड और (४) नरक।' इस प्रकार अन्य ग्रन्थों ने भी, परदार-गमन की निन्दा की है।

परदार-गमन की हानि पर एक उदाहरण।

पराई स्त्री के साथ रमण करने वाला पुरुष, कभी-कभी कैसे घोर पाप में प्रवृत्त हो जाता है और पराई स्त्री के त्यागवाला पुरुष, ऐसे पाप से किस प्रकार बच जाता है, इसके लिए एक दृष्टान्त दिया जाता है।

एक बार, तीन आदमी विदेश गये। उन तीनों में से एक तो व्रतधारी श्रावक था—उसने स्वदार सन्तोष व्रत स्वीकार करके पर-स्त्री का त्याग कर दिया था—और शेष दो आदमी, व्रत-रहित, एवं परदार गामी थे। इन तीनों की माताएँ, बहुत पहले से ही घर से निकल गई थीं, जो उसी स्थान पर वेश्या-वृत्ति करती थीं, जहाँ ये तीनों आदमी गये थे। उन त्यागव्रत रहित दोनों आदमियों ने, एक रात में, वेश्यागमन का विचार किया। इस विचार को, उन्होंने अपने श्रावक मित्र से भी प्रकट किया। श्रावक ने, अपने साथियों के विचार का विरोध किया, तथा वेश्यागमन से इनकार कर दिया। उन दोनों ने, श्रावक से बहुत आग्रह किया और कहा, कि तुम्हें वेश्या के यहाँ जाने को पैसे हम देंगे; तुम जाओ! दोनों साथियों ने, श्रावक को वेश्या

के यहाँ जाने के लिए विवश कर दिया।

तीनों मित्र, उन्हीं तीन वेश्याओं के यहाँ गये, जो इनकी माताएँ थीं। योगायोग से तीनों आदमी, अपनी-अपनी माँ के ही यहाँ गये। श्रावक को तो पर-स्त्री-संभोग का त्याग था, इसलिए वह वेश्यारूपिणी अपनी माता के पास बैठ गया और उससे बातें करने लगा। बातों ही बातों में इन दोनों ने एक दूसरे को पहचान लिया। श्रावक ने, अपनी माता से पूछा कि—तू यहाँ कैसे आगई? उसने उत्तर दिया, कि मैं, और मेरी पड़ोस की दो साथिनी-जो अमुक-अमुक की माँ हैं—हम तीनों यहाँ बहुत दिनों से वेश्यावृत्ति करती हैं। श्रावक ने कहा—ग़जब हुआ! वे दोनों भी यहाँ आये हैं और अपनी माताओं के यहाँ गये हैं! जल्दी दौड़कर उन्हें बचाओ!

माता और पुत्र, उन दोनों के यहाँ दौड़कर गये, परन्तु इनके जाने से पूर्व ही वे दोनों अपनी-अपनी माँ से भ्रष्ट हो चुके थे।

श्रावक की प्रेरणा से, ये तीनों स्त्रियें भी वेश्या-वृत्ति छोड़ कर अपने-अपने घर चलीं। श्रावक के दोनों मित्र भी साथ ही थे, लेकिन उन दोनों मित्रों को, अपने कृत्य पर इतनी लज्जा हुई, कि वे दोनों ही जहाज से कूद कर डूब मरे।

यदि उस एक श्रावक की ही तरह ये दोनों मित्र भी परदार-त्यागी होते, तो इस प्रकार माँ के साथ भ्रष्ट होने एवं लज्जित होकर मरने का मौक़ा क्यों आता? आजकल भी, इस प्रकार की कई घटनाएँ सुनने में आती हैं, जिनमें परदार-गामी पुरुष ने, अपनी पुत्री आदि के साथ भी दुराचार किया। ऐसे घोर पापों

से बचने के लिए भी, स्वदार सन्तोषव्रत स्वीकार करना और परस्त्री का त्याग करना उचित है।

आजकल के पुरुषों में, शायद ऐसे पुरुष तो अधिक निकलेंगे, जो मांस-मदिरा के त्यागी हों, लेकिन परदार-त्यागी-पुरुष सम्भवतः बहुत कम निकलेंगे।

परदार-गमन, मांस और मदिरा के समान ही त्याज्य है।

मांस-मदिरा के त्यागी और परदार-भोगी पुरुष, संभवतः परदार को मांस-मदिरा की अपेक्षा ग्राह्य समझते हैं। लेकिन वास्तव में मांस-मदिरा की अपेक्षा परदार ग्राह्य नहीं है, किन्तु मांस-मदिरा के समान ही त्याज्य है। मांस-मदिरा की ही तरह परदार-सेवन भी, बुद्धि, धन, सौन्दर्य, दया, सहानुभूति और धर्म का नाशक एवं हिंसादि पापों में प्रवृत्त करनेवाला है। ऐसा होते हुए भी, बहुत से लोग इस पाप से मांस-मदिरा के पाप की तरह नहीं बचते।

उपासक दशाङ्ग-सूत्र के ८ वें अध्ययन में, महाशतक श्रावक का वर्णन आया है। महाशतक की स्त्री रेवती मांस-भक्षिणी थी और महाशतक श्रावक था, फिर भी उसने मांस-भक्षिणी रेवती को नहीं त्यागा। सम्भवतः इसका कारण यह था, कि रेवती मांस-भक्षण का पाप तो करती थी, परन्तु पर-पुरुष सेवन का पाप नहीं करती थी, किन्तु महाशतक परही अनुरक्त थी। इस कारण शायद महाशतक ने यह विचारा होगा, कि यदि मैं इसे त्याग दूँगा, तो सम्भव है कि यह व्यभिचार का भयंकर पाप करने लगे। जान पड़ता है, कि इसी विचार से महाशतक श्रावक ने, मांस-भक्षिणी रेवती का त्याग नहीं किया। इससे यह सिद्ध

हुआ, कि महाशतक की दृष्टि में व्यभिचार यदि मांस-भक्षण से अधिक नहीं, तो उसके समान ही पाप था।

बहुत से पुरुष, अपनी स्त्री से तो पातिव्रत पालन कराना चाहते हैं, उसे पर-पुरुष-गामिनी नहीं देखना चाहते, लेकिन अपने आपको, परदार-गमन के लिए स्वतन्त्र समझते हैं। ऐसे लोग, जान-बूझकर बबूल बोते हैं और फिर भी आम खाने की इच्छा रखते हैं। किसी नियम का पालन, दूसरे से तभी कराया जा सकता है, जब स्वयं भी उसका पालन करे। जबतक स्वयं-द्वारा किसी नियम का पालन न किया जावे, तबतक दूसरे से उस नियम का पालन कराने में सफलता नहीं मिल सकती। यह बात दूसरी है, कि परदारगामी पुरुष की स्त्री, अपना धर्म विचार कर स्वयं ही सदाचारिणी रहे, लेकिन, परदारगामी-पुरुष को सैद्धान्तिक रूप में यह अधिकार नहीं रहता, कि वह अपनी स्त्री को सदाचारिणी रहने के लिए बाध्य कर सके। यह अधिकार उसे तभी हो सकता है, जब वह भी सदाचार का पालन करता हो। बल्कि स्त्रियों को पर-पुरुष-गामिनी बनानेवाले, परदार-गामी पुरुष ही हैं। ज्यादातर स्त्री स्वयं ही परपुरुष-गामिनी नहीं होतीं, किन्तु परदार-गामी-पुरुष ही अपने लिए किसी स्त्री को पर-पुरुष-गामिनी बनाता है। अतः अपनी स्त्री को पतिव्रता, सदाचारिणी और पति-परायणा रखने के लिए भी, स्वदार-सन्तोषव्रत स्वीकार कर पालन करना चाहिए।

पत्नी को सदाचारिणी रखने के लिए स्वयं सदाचारी बनो!

यद्यपि इस व्रत में, स्व-स्त्री का आगार रहता है, लेकिन

इसका यह अर्थ नहीं हो सकता, कि स्व-स्त्री से मैथुन करने में स्वच्छन्दता से काम लिया जावे। क्योंकि इस व्रत का नाम, स्वदार सन्तोष है, स्वदार-रमण नाम नहीं है। यदि स्वदार-रमण नाम होता, तब तो स्व-स्त्री के सेवन में स्वच्छन्दता को स्थान हो सकता था, लेकिन स्वदार-सन्तोष नाम में, स्वच्छन्दता को स्थान ही नहीं रहता। इसलिए आगार होने पर भी, स्वदार-सेवन में नीतिकारों की बताई हुई मर्यादा का पालन करना आवश्यक है। नीतिकारों का कथन है—

स्व-स्त्री सेवन में नियमितता।

सन्तानार्थञ्च मैथुनम्।

'मैथुन का विधान, सन्तान उत्पन्न करने के लिए ही है।'

वैद्यक-मतानुसार, रजोदर्शन से पूर्व स्त्री-पुरुष का संसर्ग, सन्तानोत्पत्ति के लिए निरर्थक है और ऋतु-स्नान के सिवा अन्य समय में किये गये मैथुन से, वीर्य वृथा जाता है। इसलिए ग्रन्थकारों ने कहा है—

रजो दर्शनतः पूर्वं स्त्री-संसर्ग मा चरेत।

भविष्य पुराण।

'रजोदर्शन से पहले, स्त्री-संसर्ग न करे।'

इस प्रकार, ऋतु-स्नान से पूर्व, स्त्री-सेवन का निषेध किया गया है। ऋतु-स्नान से पूर्व, स्त्री-सेवन द्वारा वीर्य को वृथा नाश करनेवाले के लिए ग्रन्थकार कहते हैं—

व्यर्थीकारेण शुक्रस्य ब्रह्महत्या मवाप्नुयात्।

निर्णय सिन्धु।

'वीर्य को वृथा खोने से, ब्रह्महत्या का पाप होता है।'

इस प्रकार स्वच्छन्दता से, अपनी स्त्री का सेवन करने का भी निषेध किया गया है। वैद्यकमतानुसार, स्व-स्त्री के साथ भी अति मैथुन करने से, शारीरिक शक्ति क्षय होती है, वीर्य पतला पड़ता है; सन्तान दुर्बल, अल्पायुषी और दुर्गुणी होती है। अति मैथुन करनेवाला अच्छे कार्य नहीं कर सकता। ऐसा पुरुष, यदि कभी अपनी स्त्री से अलग रहे, तो उसमें व्यभिचार-दोष का आजाना बहुत सम्भव है। क्योंकि, वह अपनी मैथुनेच्छा को रोकने में असमर्थ हो जाता है, इसलिए दुराचार में पड़ना आश्चर्य की बात नहीं। अति मैथुन से, आँखों की ज्योति क्षीण हो जाती है, दाँत गिर जाते हैं और शरीर से दुर्गन्ध आने लगती है। अति मैथुन के कारण, क्षय, प्रमेह, स्वप्नदोष, नपुंसकता, आदि रोग उत्पन्न होते हैं और आयुर्बल कम होता है। वैद्यक ग्रन्थों में कहा है—

अति स्त्री सम्प्रयोगाच्च रक्षेदात्मनमात्मवान् ।
क्रीड़ाया मपि मेधावी हितार्थी परिवर्जयेत् ॥१॥
शूल कास ज्वर श्वास कार्श्य पांड्वामयक्षयाः ।
अति व्यवायाज्जायन्ते रोगाश्चाक्षेप का दयः ॥

'अति स्त्री-प्रसंग से अपने को बचाये रहना, सावधान मनुष्य को उचित है। अपना भला चाहनेवाले बुद्धिमान पुरुषों के लिए, क्रीड़ा में भी अति प्रसंग वर्ज्य है। अतिमैथुन से, शूल, खाँसी, ज्वर, श्वास, दुर्बलता, पीलिया, क्षय आदि वात व्याधि उत्पन्न होती हैं।'

तात्पर्य यह, कि अपनी स्त्री से भी अतिमैथुन वर्ज्य है। अतिमैथुन के साथ ही, नीतिकारों ने, असंमय के मैथुन का भी

निषेध किया है। दिन का समय, रात का पहला और अन्तिम पहर, तथा स्त्री गर्भवती हो वह समय, मैथुन के लिए निषिद्ध है। दिन में तथा रात के पहले और अन्तिम पहर में, स्वस्त्री से किया गया मैथुन भी शरीर-सम्बन्धी वे ही हानियें करनेवाला होता है, जो हानियें परस्त्री गमन से होती हैं। इसी प्रकार, गर्भवती स्त्री से मैथुन करने से, गर्भ के बालक पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी तो माता-पिता की इस कुचेष्टा से, गर्भ में ही बालक की मृत्यु हो जाती है। यदि बालक जन्मा भी, तो वह बचपन से ही अब्रह्मचर्य की कुचेष्टाएँ करने लगता है और अन्त में, महाभयंकर परिणाम को प्राप्त होता है। गर्भवती स्त्री से मैथुन करने पर, वह गर्भवती स्त्री भी रोग-ग्रस्त हो जाती है, तथा प्रसूति रोगादि से मर भी जाती है। गर्भवती से मैथुन करने के कार्य को, यदि मनुष्य-हत्या के समान पाप कहा जावे, तब भी कोई अत्युक्ति न होगी।

गर्भवती स्व-स्त्री के समान ही, उस स्वस्त्री से भी मैथुन करना वर्ज्य है, जिसका बालक छोटा हो। छोटे बालक की माँ के साथ, ऋतुकाल में मैथुन करना भी, वैद्यक और नीति के अनुसार हानिप्रद है। ऐसी स्त्री के साथ मैथुन करने से और उस स्त्री के गर्भवती हो जाने से, उस छोटे बालक का विकास रुक जाता है, और गर्भ का बालक भी, कमजोर, रुग्ण, एवं अल्पायुषी होता है। इसलिए स्व-स्त्री से भी ऐसा मैथुन करना त्याज्य है।

वर्तमान समय के परदार-त्यागी और स्वदार-सन्तोषी पुरुषों

में संभवतः ऐसे पुरुष तो गिन्ती के ही निकलेंगे, जो स्व-स्त्री-सेवन में नीतिकारों की बताई हुई मर्यादाओं का पालन करते हों। लोगों के मुँह से, एक-दो या चार-छः दिनों के लिए मैथुन का त्याग कराने की बात सुनकर, समाज की पतनावस्था पर दया आती है। उनके इस त्याग लेने की बात से यह स्पष्ट है, कि ऐसा कोई ही दिन जाता होगा, जिस दिन वे मैथुन से बचे रहते हों। यद्यपि नीतिकारों ने ऋतुकाल के सिवा अन्य समय में स्त्री-गमन का निषेध किया है, और इस बात का समर्थन वैद्यक-ग्रन्थ भी करते हैं, तथा प्राकृतिक रचना पर दृष्टिपात करने से भी यही प्रकट है, फिर भी, लोग इस मर्यादा की अवहेलना करते हैं। ऐसे लोगों को मनुष्य कहने का कारण, उनकी शारीरिक रचना के सिवा और कुछ नहीं रहता। क्योंकि, जिन नियमों का पालन बुद्धिहीन पशु भी करते हैं, उन नियमों का पालन, यदि बुद्धि-सम्पन्न मनुष्य न करे, तो फिर उसमें, पशुओं की अपेक्षा-शारीरिक रचना के सिवा कौन सी विशेषता रही ? पशु भी प्रायः ऋतु-काल के सिवा अन्य समय में मैथुन नहीं करता। यदि मनुष्य होकर भी इस नियम की अवहेलना करता है, तो इससे अधिक पतन की बात और क्या होगी ? स्वदार-सन्तोषव्रत का पूर्णतया पालन तभी समझना चाहिए, जब पर-स्त्री को त्यागने के साथ ही, स्व-स्त्री के सेवन में अनियमितता न की जावे, यानी सन्तोष से काम लिया जावे।

इस समय के स्वदार-सन्तोषी।

स्वदार-सन्तोषव्रत की विशेषता तब है, जब मौजूदा पत्नी

का ही आगार रखा जावे, जैसा कि आनन्द श्रावक ने, अपनी शिवानन्दा स्त्री का आगार रखा था। व्रत धारण करने के पश्चात्, और विवाह करने की इच्छा न रखी जावे। पुरुषों ने, अपने प्रभुत्व से बहुविवाह या एक स्त्री के मरने पर दूसरा विवाह करने का अधिकार बढ़ा लिया है, अन्यथा प्राकृतिक रचना पर ध्यान देने, एवं न्याय-दृष्टि से विचारने पर, यह बात स्पष्ट है, कि इस विषय में पुरुष को, स्त्री से अधिक अधिकार नहीं हैं। अर्थात्, जिस प्रकार स्त्रियें एक-पतिव्रत का पालन करती हैं, उसी प्रकार पुरुषों को भी, एक पत्नी-व्रत का पालन करना उचित है और जिस-प्रकार, विधवा होने पर भी स्त्रियें, दूसरे पुरुष के साथ विवाह नहीं करतीं, उसीप्रकार पुरुष को भी विधुर होने पर, दूसरी स्त्री के साथ विवाह करना उचित नहीं; किन्तु विधवाओं की तरह, विधुर को भी ब्रह्मचर्य पालना चाहिए।

एक पत्नीव्रत।
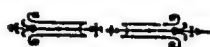
स्वपतिसन्तोष-व्रत।

कोकिलानां स्वरो रूपं नारी रूपं पतिव्रतम्।

चाणक्य नीति।

'कोयल का रूप उसका स्वर है और स्त्री का रूप, उसका पति-व्रत है।'

सर्वविरतिब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार करने में असमर्थ विवाह करने वाली-स्त्रियों को विवाह करने के पश्चात् भी, स्वपति सन्तोष-व्रत स्वीकार एवं पालन करना चाहिए।

प्रशंसा

स्वपतिसन्तोषव्रत स्वीकार करने वाली स्त्रियें, देशविरति-ब्रह्मचारिणी कहलाती हैं, और व्यवहार तथा अन्य ग्रन्थकारों की दृष्टि में, ऐसी स्त्रियें ब्रह्मचारिणी भी कहाती हैं। जैसे—

या नारी पतिभक्तास्यात्सा सदा ब्रह्मचारिणी।

सूक्ति।

'जो स्त्री, पतिभक्ता है—दूसरे पुरुष से अनुराग नहीं रखती-वह सदा ब्रह्मचारिणी कहाती है।'

स्वपतिसन्तोषव्रत स्वीकार एवं पालन करने से, स्त्रियों को वे ही लाभ होते हैं, जो लाभ पुरुषों को स्वदारसन्तोष-व्रत से होते हैं। संसारावस्था में स्त्रियों के लिए, स्वपति सन्तोषव्रत के समान, और कोई कार्य, इस लोक तथा परलोक में हितसाधक नहीं है। दूसरे कार्य किसी एक ही लोक का हित साधने में समर्थ हो सकते हैं, लेकिन स्वपतिसन्तोषव्रत से दोनों ही लोक सुधरते हैं। अन्य ग्रन्थकार भी कहते हैं—

लाभ

पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देह संयता।
सा भर्तृलोकानाप्नोति सद्भिः साध्वीतिचोच्यते॥

मनुस्मृति।

'जो स्त्री, मन, वाणी तथा शरीर से व्यभिचार नहीं करती है, पर-पुरुष को नहीं वंछती है, वह इसलोक में साध्वी कही जाती है और मरने पर, स्वर्ग और परम्परा से मोक्ष को प्राप्त होती है।'

स्वपतिसन्तोषव्रत स्वीकार करनेवाली स्त्री के लिए, इस लोक तथा परलोक में, कुछ भी दुर्लभ नहीं है। पतिव्रता-स्त्री की सेवा-सहायता के लिए देवता, भी तत्पर रहा करते हैं। शास्त्रों में, सीता, द्रौपदी और सुभद्रा आदि सतियों का वर्णन, उनके सतीत्व के कारण ही आया है, एवं अग्नि का शीतल होना भी उनके पातिव्रत का ही प्रभाव है। इसके विपरीत जो स्त्रियें व्यभिचारिणी हैं, उनके लिए, इस लोक और परलोक में वे ही हानियें हैं, जो हानियें व्यभिचारी पुरुष के लिए बताई गई हैं। अन्य ग्रन्थकारों ने भी कहा है—

व्यभिचार-निन्दा।

व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम।
शृगाल योनिंचाप्नोति पाप रोगैश्च पीड्यते॥

मनुस्मृति।

'पर-पुरुष के साथ रमण करनेवाली व्यभिचारिणी स्त्री, इस लोक में निन्दा को प्राप्त होती है, पाप तथा रोगों से पीड़ित होती है और मरकर स्यारी की योनि पाती है। यानी नर्क-तिर्यंक गति को प्राप्त होती है।'

स्वपति-सन्तोषव्रत पालन करने के लिए, स्त्रियों को भी उन नियमों का पालन करना आवश्यक है, जो नियम स्वदार-सन्तोष व्रत लेनेवाले पुरुषों के लिए, बताये गये हैं। बल्कि, धर्म-सहायिका होने के कारण स्त्रियों पर, अपने पति को व्रत पर स्थिर रखने, एवं नियमों का

नियम

पालन कराने की जिम्मेदारी और आ पड़ती है। स्वपति सन्तोष-व्रत की आराधिका स्त्री, ऐसे कोई कार्य नहीं करती, जिनके करने से उसके या उसके पति के व्रत में दोष लगता हो; या व्रत से सम्बन्ध रखनेवाले नियम भंग होते हों।

देशविरति ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए, उन नियमों को आदर्श मानकर यथासंभव उनका अनुसरण करना उचित है, जो नियम सर्वविरतिब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए बताये गये हैं। यह बात दूसरी है, कि देश-विरति ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकारने वाले लोग गृहस्थ होते हैं, इसलिए समुचित रूप में उन नियमों का पालन न कर सकें, लेकिन आंशिक रूप में अवश्य पालन कर सकते हैं। उदाहरण के लिए सर्वविरति ब्रह्मचारी की तरह देशविरतिब्रह्मचारी, उस मकान में, जिसमें स्त्री, पशु रहते हों न रहने का नियम नहीं पाल सकता, लेकिन स्त्री-पुरुष अलग-अलग कमरों में रहने, या एक शय्या पर शयन न करने के नियम का पालन कर सकता है। इसी-प्रकार, देशविरति ब्रह्मचारी यदि स्त्री-मात्र को न देखने-उनसे बात चीत हँसी-मजाक आदि न करने—का नियम नहीं पाल सकता, तो पर-स्त्री के लिए तो इस नियम को पाल ही सकता है। सारांश यह, कि देशविरति ब्रह्मचारी को, सर्वथा नहीं, तो आंशिकरूप में उन नियमों का पालन करना उचित है, जो नियम, सर्वविरति ब्रह्मचारी एवं ब्रह्मचारिणी के लिए बताये गये हैं।

व्रत-रक्षा के उपाय।

देश-विराति ब्रह्मचर्य व्रत के अतिचार ।

शास्त्र में, प्रत्येक व्रत की चार मर्यादा बतलाई गई हैं; अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार। व्रत को उल्लंघन करने का सङ्कल्प करना अतिक्रम है। इस संकल्प को पूरा करने के लिए सामग्री जुटाना, व्यतिक्रम है। व्रत को उल्लंघन करने के संकल्प को कार्यरूप में परिणत करने के लिए तैयार हो जाना, अतिचार है और व्रत का उल्लंघन करने के संकल्प को पूरा कर डालना यानी व्रत को तोड़ डालना, अनाचार है।

व्याख्या

यद्यपि, व्रत में दूषण तो अतिक्रम और व्यतिक्रम से भी लगता है, लेकिन मानव-स्वभाव को दृष्टि में रखकर, व्यवहार में अतिक्रम और व्यतिक्रम से व्रत दूषित नहीं माना जाता; किन्तु अतिचार से व्रत दूषित माना जाता है और अनाचार से तो, व्रत नष्ट ही हो जाता है। व्रत में दूषण का प्रारम्भ अतिचार से माना जाता है, इसलिए प्रत्येक व्रत के अतिचारों को जानकर उनसे बचना आवश्यक है।

देश विरति ब्रह्मचर्य व्रत के, भगवान महावीर ने पाँच अति-चार बताये हैं; जो इस प्रकार हैं—

सदार संतोसीए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा-इत्तिरिय परिग्गहिया गमणे, अपरिग्गहिया गमणे, अनंगक्रीडा करणे, पर विवाह करणे, कामभोग तिव्वाभिलासे।

'स्वदार सन्तोष व्रत के पाँच अतिचार जानने योग्य हैं, लेकिन आचरण योग्य नहीं हैं। वे अतिचार ये हैं—इत्वरपरिगृहीतागमन, अपरिगृहीता गमन, अनंग क्रीड़ा, पर विवाह करण, कामभोग में तीव्र अभिलाषा।'

पहला अतिचार

देशविरति ब्रह्मचर्यव्रत का पहला अतिचार, इत्वरपरिगृहीता गमन है। बहुत से लोग, स्वदारसन्तोषव्रत लेकर भी यह गुञ्जायश निकालने लगते हैं, कि हमने स्वदार का आगार रखा है, अतः यदि किसी स्त्री को कुछ समय के लिए रुपये-पैसे देकर—या बिना दिये ही—अपनी बना ली जावे और उसके साथ स्वदार का-सा व्यवहार किया जावे, तो इससे स्वदारसन्तोष-व्रत में कोई दूषण नहीं आता। यद्यपि, स्वदार-सन्तोषव्रत में, केवल स्वदार—यानी जिसके साथ, देश और समाज प्रचलित रीति से विवाह हुआ है, उसी का आगार रहता है, फिर भी, कई लोग उक्त प्रकार की गुंजायश निकालने लगते हैं। लेकिन इस प्रकार की गुंजा-यश निकालकर, जो अपनी नहीं है, उस स्त्री को, थोड़े समय के लिए अपनी बनाकर, उसके साथ मैथुन करने के लिए तैयार हो जाना, अतिचार है। ऐसा करना, जबतक अतिचार के रूप में है, तबतक तो व्रत में दूषण ही लगता है—व्रत नष्ट नहीं होता-

लेकिन इस प्रकार का कार्य अनाचार के रूप में होने पर, यानी मैथुन क्रिया रूप में हो जाने पर व्रत नष्ट हो जाता है।

दूसरा अतिचार अपरिगृहीता-गमन है। परदार से निवर्तनेवाले बहुत से लोग, परदार-त्याग का यह अर्थ लगाने लगते हैं, कि जो स्त्री दूसरे की है, जिसका स्वामी कोई दूसरा पुरुष है, उस स्त्री से मैथुन करने का हमने त्याग लिया है, लेकिन जो स्त्री किसी दूसरे की है ही नहीं, जिसका कोई नियत पति ही नहीं है—जैसे वेश्या—या जिसका विवाह ही नहीं हुआ है, या विवाह तो हुआ है, लेकिन अब वह पतिविहीना है—जैसे विधवा, या पति-परित्यक्ता—ऐसी स्त्री के साथ मैथुन करने से लिये हुए त्याग में, कोई दूषण नहीं आता। यद्यपि, पर-स्त्री के त्याग में उन सभी स्त्रियों का त्याग हो जाता है, जो अपनी नहीं हैं, फिर भी कई लोग इस प्रकार गुंजायश निकालने लगते हैं। लेकिन इस प्रकार की गुंजायश निकालकर, जो स्त्री अपनी नहीं हैं, उस स्त्री से मैथुन करने के लिए तैयार हो जाना, त्याग की प्रतिज्ञा को दूषित करना है। अतिचार की सीमा तक—यानी मैथुन करने की तैयारी तक—तो त्याग की प्रतिज्ञा दूषित ही होती है, लेकिन अतिचार की सीमाका उल्लंघन होते ही—अनाचार होने पर—लिया हुआ व्रत नष्ट होजाता है।

दूसरा अतिचार

कई लोग कहते हैं, कि वेश्या तो किसी की स्त्री नहीं है, इस कारण वेश्या-संभोग से व्रत नष्ट नहीं होता। ऐसा कहने और समझनेवाले लोग, लिये हुए व्रत और त्याग के रहस्य से ही अनभिज्ञ हैं। स्वदार-सन्तोषव्रत और परदार-विरमण, स्त्री-भोग की लालसा को

वेश्या-गमन से हानि

सीमित करके, शनैः-शनैः उसे कम करने के लिए है। लेकिन वेश्या-संभोग, पर-स्त्री-संभोग से भी अधिक हानिप्रद है। वेश्या-संभोग से, दुर्विषय-लालसा में ऐसी भयंकर वृद्धि होती है, कि जिसका वर्णन करना, शक्ति से परे की बात है। वेश्या-गामी पुरुष-दुर्विषय-लालसा में वृद्धि होने के कारण-वेश्या के पीछे अपना सब कुछ खो बैठता है। वेश्या के पीछे, बड़े-बड़े धनिकों को—अपना धन-वैभव खोकर—भीख माँगनी पड़ती है। बड़े-बड़े परिवार वाले, वेश्या के कारण निःसहाय हो जाते हैं। बड़े-बड़े बलवान, वेश्या-संग से बलहीन हो जाते हैं। इतना होने पर भी, जिस वेश्या के पीछे यह सब होता है, वह वेश्या, किसी भी पुरुष की नहीं होती। वेश्यागामी-पुरुष, इस-लोक में निन्दित और परलोक में दण्डित होता है। बड़े अनुभव के पश्चात् भर्तृहरि कहते हैं—

वेश्या सौ मदनज्वाला रूपेन्धन समेधिता।
कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च॥

'वेश्या, कामाग्नि की ज्वाला होती है, जो रूप-ईंधन से सजी रहती है; कामी लोग, इस रूप-ईन्धन से सजी हुई वेश्या नाम्नी कामाग्नि की ज्वाला में, अपने यौवन और धन की आहुति देते हैं।'

तात्पर्य यह, कि वेश्या-गमन भयंकर पाप है। वेश्या-गामी पुरुष का अन्तःकरण इतना कलुषित हो जाता है, कि वह अपने कुटुम्ब की स्त्रियों पर कुदृष्टि डालने में, तथा मनुष्य-हत्या एवं आत्म-हत्या करने में भी नहीं हिचकिचाता।

तीसरा अतिचार अनंगक्रीड़ा है। कामसेवन के लिए

प्राकृतिक जो अंग हैं, उनके सिवा शेष सब अंग, काम सेवन के लिए अनङ्ग हैं। जो अङ्ग, काम-सेवन के लिए अनङ्ग हैं, उनसे काम-क्रीड़ा करना, अनङ्ग-क्रीड़ा कहलाती है। जैसे-गुदामैथुन, हस्त-मैथुन, मुखमैथुन, कर्णमैथुन, आदि। इन सब मैथुनों की विशेष व्याख्या, अश्ली-लता से भरी हुई है, इसलिए विशेष व्याख्या न करके इतना ही कहा जाता है, कि स्व-स्त्री से भी ऐसा मैथुन करने से, व्रत में दूषण लगता है। इसलिए व्रत-धारी को इस अतिचार से बचना चाहिए।

तीसरा अतिचार

चौथा अतिचार,पर-विवाह करण है। आनन्द श्रावक की तरह अपनी स्त्री का नाम लेकर स्वदार सन्तोषव्रत स्वीकार करनेवाला, केवल अपनी उसी स्त्री पर सन्तोष करने को प्रतिज्ञा करता है, जो प्रतिज्ञा करने के समय मौजूद है और जिसके साथ देश और समाज प्रचलित रीति से, विवाह हो चुका है। ऐसा होने पर भी, कई लोग यह गुञ्जायश निकालने लगते हैं, कि हमने स्व-स्त्री सन्तोषव्रत लिया हैं, इसलिए यदि किसी अविवाहित-स्त्री से विवाह करके उसे अपनी ही बनालें, तो कोई हर्ज नहीं। ऐसा करने से, हमारे व्रत में दूषण न लगेगा। वास्तव में ऐसा करना प्रतिज्ञा—विरुद्ध है। जबतक यह कार्य अतिचार की सीमा तक है, तबतक तो व्रत में दूषण ही लगता है, लेकिन अनाचार के रूप में होने पर, व्रत नष्ट हो जाता है। यह बात दूसरी है, कि कोई अपनी इच्छा-नुसार व्रत ले, लेकिन आनन्द की तरह स्वदार-सन्तोषव्रत लेने पर, पुनः विवाह करने का अधिकार नहीं रहता। इस व्याख्या

चौथा अतिचार

के विषय में आचार्य हरिभद्रसूरिजी कृत 'धर्मबिन्दु' प्रमाण है ।

इस अतिचार का एक अर्थ, दूसरे का विवाह करना-कराना भी है । बहुत से लोग धर्म या पुण्य समझकर, दूसरे लोगों का विवाह करने-कराने लगते हैं, लेकिन व्रतधारी के लिए, ऐसा करना निषिद्ध है । ऐसा करने से, उसका व्रत दूषित होता है ।

पाँचवाँ अतिचार,काम-भोग की तीव्र अभिलाषा है । स्वदार-सन्तोषव्रत, काम-भोग की अभिलाषा को, मन्द करने के लिए ही लिया जाता है और इसीलिए इसके नाम में 'सन्तोष' शब्द लगा हुआ है । ऐसा होते हुए भी कई लोग, काम-भोग की अभिलाषा को तीव्र करने की चेष्टा करते हैं; यानी वाजीकरण आदि औषधि का सेवन करते हैं, या कामोद्दीपन की चेष्टा करते हैं और समझते हैं, कि इसमें हमारे व्रत को कोई हानि नहीं पहुँचती । लेकिन ऐसा करने से स्वदार के सेवन में सन्तोष नहीं रहता, किन्तु असन्तोष बढ़ जाता है । इसलिए व्रतधारी को, काम-भोग की अभिलाषा तीव्र करने का उपाय न करना चाहिए । ऐसा करने से व्रत में अतिचार होता है और व्रत दूषित हो जाता है ।

पाँचवाँ अतिचार

इन अतिचारों को जानकर, इनसे बचना, देशविरति ब्रह्मचारी के लिए आवश्यक है । *

---

* इन अतिचारों का अर्थ करने में भिन्न-भिन्न आचार्यों का भिन्न-भिन्न मत है । कोशिश करने पर भी हम ऐसा सुअवसर प्राप्त न कर सके कि चर्चा द्वारा सब आचार्य इस विषय में एक मत हो जाते । अत व्याख्याता महोदय की टीकानुमोदित धारणानुसार यह अर्थ दिया गया है। यदि भविष्य में कोई सर्वानुमोदित या उचित अर्थ प्राप्त हुआ, तो दूसरे संस्करण में परिशोधन कर दिया जावेगा । —सम्पादक ।

उपसंहार ।

पूर्ण-ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल शारीरिक संयम ही नहीं है, किन्तु सभी इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार और मन, वचन, काय करके काम-भाव से सर्वथा मुक्ति है। पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन, असंभव या अस्वाभाविक नहीं है, किन्तु सम्भव और स्वाभाविक है। यद्यपि पूर्ण ब्रह्मचर्य का सर्वांश में पालन तो गृहत्यागी साधु ही कर सकते हैं, लेकिन आंशिक रूप में गृहस्थ भी पाल सकता है और शरीर के साधारण विकास के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना आवश्यक है। इसके लिए दृढ़ता की आवश्यकता अवश्य है। जिसमें दृढ़ता नहीं है, जो इन्द्रियों के किंचित प्रकोप के सामने ही झुक जाता है, वह ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता। क्योंकि, इन्द्रियों के सामने थोड़ा भी झुक जाने पर, इन्द्रियों का बल बढ़ता जाता है, वे अपना आधिपत्य जमाती जाती हैं, और फिर ब्रह्मचर्य से ही दूर नहीं फेंक देतीं, किन्तु दुराचार के गड्ढे में डाल देती हैं।

जिस प्रकार ब्रह्मचर्य स्वाभाविक है, उसी प्रकार, दुर्विषय-भोग अस्वाभाविक है; जिसकी इच्छा होना, प्रायः बुरे तौर पर किये गये लालन-पालन का फल है। गाँधीजी के शब्दों में, 'माताएँ और दूसरे सम्बन्धी अबोध बच्चों को यह सिखलाना धार्मिक-कर्त्तव्य-सा मान बैठते हैं, कि इतनी उम्र होने पर तुम्हारा विवाह होगा। बच्चे के भोजन और कपड़े भी, बच्चे को उत्तेजित करते हैं। बच्चों को, सैकड़ों तरह की गर्म और उत्तेजक चीजें खाने को देते हैं; अपने अंध-प्रेम में, उनकी शक्ति की कोई पर्वा नहीं करते। इस प्रकार माता-पिता स्वयं विकारों के सागर में डूबकर, अपने लड़कों के लिए बेलगाम स्वच्छन्दता के आदर्श बन जाते हैं।' गांधीजी का यह कथन, अधिकांश में ठीक है और इस प्रकार का पालन-पोषण ही विषयेच्छा उत्पन्न करने का कारण है।

दुर्विषय-भोग, उसी प्रकार अस्वाभाविक और ब्रह्मचर्य उसी प्रकार स्वाभाविक है, जिस प्रकार असत्य, अस्वाभाविक और सत्य, स्वाभाविक है। यदि किसी बालक के सामने, असत्य का वातावरण न आने दिया जावे, तो वह बालक 'असत्य' किसे कहते हैं, यह भी न जानेगा, न असत्य का उपयोग ही करेगा। ठीक इसी प्रकार, यदि किसी बालक के सामने दुर्विषय-भोग सम्बन्धी कोई बात न की जावे, काम-भोग का कोई आचरण न किया जावे, तो सम्भवतः उसमें उस प्रकार की दुर्विषयेच्छा उत्पन्न ही न होगी, जैसी कि इससे विपरीतावस्था में उत्पन्न हो सकती है। बच्चों के सामने, किसी कुकृत्य को यह समझकर करना; कि ये बच्चे क्या जानें, भूल है। बच्चों पर, प्रत्येक

अच्छी या बुरी बात का स्थायी प्रभाव पड़ता है। उनके हृदयरूपी कोरे चित्रपट पर, प्रत्येक बात इसप्रकार अंकित हो जाती है, जो मिटाने से मिट नहीं सकती। वास्तव में, यह समझना ही भूल है, कि हमारे किसी कार्य को दूसरा नहीं देखता, या हमारे कार्य का अच्छा-बुरा प्रभाव, दूसरे पर नहीं पड़ सकता। गुप्त से गुप्त कार्य और विचारों का प्रभाव भी, इतना गहरा और इतनी दूर तक पड़ता है, कि जिसका अनुमान लगाना भी कठिन है।

यद्यपि, पूर्ण ब्रह्मचर्य के आदर्श तक सभी लोग नहीं पहुँच सकते, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति के सामने इस आदर्श का होना आवश्यक है। जिसकी मानसिक आँखों के सामने यह आदर्श नहीं है, वह पतित से भी पतित हो जाता है। वह दुर्विषय-वासना की लगाम को, काबू में नहीं रख सकता, किन्तु उसका गुलाम हो जाता है।

पूर्ण ब्रह्मचर्य से झुका आदर्श, एक पत्नीव्रत और एक पति-व्रत है। जो लोग, पूर्ण ब्रह्मचर्य के आदर्श की ओर, सहसा गति करने में अपनेआप को असमर्थ देखते हैं—मार्ग में पतित होने का भय है—उनके लिए, यह दूसरा नीचे से नीचा आदर्श है। यह आदर्श, कमजोर लोगों के लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य तक पहुँचने के मार्ग में—एक विश्रान्तिस्थल है। इससे नीचा कोई आदर्श नहीं है, न इससे नीची अवस्थावाला, ब्रह्मचर्य के मार्ग का पथिक ही माना जा सकता है।

विवाह, दुर्विषयेच्छा मिटाने की दवा है, न कि दुर्विषयेच्छा की तृप्ति का साधन। दुर्विषयेच्छा की तृप्ति तो कभी हो ही नहीं

सकती । उसकी तृप्ति के लिए, जैसे-जैसे उपाय किया जावेगा, वह वैसे ही वैसे बढ़ती जावेगी । दुर्विषयेच्छा-पूर्त्ति की प्रत्येक चेष्टा, दुर्विषयों का अधिकाधिक गुलाम बनाती है ।

विशेषतः विवाह करने का कारण, सन्तानोत्पत्ति की अभिलाषा है, अतः इस अभिलाषा के पूरी हो जाने पर, दुर्विषय-भोग का त्याग कर देना ही उचित है । इसीप्रकार बढ़ती हुई सन्तान को रोकने के लिए भी, मैथुन का ही त्याग करना चाहिए, कृत्रिम उपायों का अवलम्बन लेना ठीक नहीं । सन्तति-निरोध के कृत्रिम उपाय, अनीति और पापाचार को बढ़ाने वाले तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से भी हानि-प्रद हैं ।

देशविरति-ब्रह्मचर्य-व्रत की रक्षा के लिए, स्त्री को पुरुष की और पुरुष को स्त्री की सहायता करना, उचित एवं आवश्यक है । यदि किसी समय पुरुष में व्रत या उसकी मर्यादा भंग करने की बुरी इच्छा हो, तो पत्नी का कर्त्तव्य है, कि वह प्रत्येक सम्भव उपाय से, अपने पति को ऐसा करने से बचावे । इसीप्रकार, यदि किसी समय स्त्री में ऐसी कुभावना हो, तो पति का भी यही कर्त्तव्य है । इसप्रकार एक दूसरे की सहायता एवं एक दूसरे को सावधान करते रहने से, पति-पत्नी दोनों का व्रत निर्मल पलेगा और कभी न कभी पूर्ण ब्रह्मचर्य के आदर्श तक पहुँच कर अपना कल्याण कर सकेंगे ।

श्री साधुमार्गी-जैन

पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज

के सम्प्रदाय का हितेच्छु श्रावक-मण्डल

रतलाम

का

संक्षिप्त-परिचय

इस मण्डल की स्थापना सम्वत् १९७८ में, समाज के साधु-साध्वी एवं श्रावक-श्राविकाओं में प्रेम-भाव की वृद्धि, आचार-विचार की शुद्धि एवं ज्ञान-प्रचार के उद्देश्य को लेकर हुई थी। तब से यह मण्डल आजतक अपने ध्येय की ओर अच्छी प्रगति कर रहा है। धार्मिक एवं सामाजिक शिक्षा के लिए इस मण्डल की ओर से खाचरोद में एक विद्यालय चल रहा है, जिसका अर्द्ध-व्यय श्रीमान् सेठ हीरालालजी नांदेचा प्रदान करते हैं। जैन-शिक्षण-संस्था उदयपुर को भी ३०) मासिक सहायता दी जाती है। इन दो संस्थाओं के सिवा, एक धार्मिक-

परीक्षा-बोर्ड भी स्थापित है, जिसके द्वारा भारतवर्ष की समस्त साधुमार्गी-जैन शिक्षण-संस्थाओं के छात्रों को धार्मिक-शिक्षा के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है और सब शिक्षण-संस्थाओं में एक ही धार्मिक पाठ्यक्रम की पढ़ाई का प्रबन्ध करके परीक्षा के अनन्तर उपाधि एवं पारितोषिक वितरण होता है।

ज्ञान-प्रचार के लिए इस मण्डल द्वारा श्री मज्जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहिरलालजी महाराज के चातुर्मास के व्याख्यानों का संग्रह कराया जाता है और उसमें से धार्मिक एवं सात्विक जीवन प्रदान करनेवाली पुस्तकें प्रकाशित की जाती हैं।

जो मण्डल इस प्रकार के उपयोगी कार्य कर रहा है, क्या आप उसके सदस्य न बनेंगे? क्या अपने द्रव्य का सदुपयोग ऐसे कार्य में भी न करेंगे? सदस्य बनने में कोई कठिनाई भी तो नहीं है! आप मण्डल के कोष में केवल ५००) रुपया जमा कराकर वंश-परंपरा के, या केवल १०१) रुपया जमा कराकर जीवन भर के सदस्य बन सकते हैं। यदि आप इतना नहीं कर सकते, तो २) रुपया प्रतिवर्ष देकर वार्षिक सदस्य बन जाइये! मण्डल की मासिक रिपोर्ट तीनों प्रकार के सदस्यों के समीप निःशुल्क पहुँचेगी। ऐसे शुभ कार्य के करने में देर मत करिये॥ भगवान् महावीर के इस—

समयं गोयमा मप्पमइ।

उपदेश को मत भूलिये ।

इस मण्डल द्वारा प्राप्य पुस्तकें ।

अहिंसा व्रत	।)	सद्धर्म मण्डन	२॥)
सकडाल पुत्र	=)	अनुकम्पा विचार	॥)
धर्म व्याख्या	=)	पूज्य श्री श्रीलालजी म०	
सत्यव्रत	≡)	का जीवन चरित्र	॥)
हरिश्चन्द्र-तारा	॥)	शालिभद्र चरित्र	।≡)
अस्तेयव्रत	=)	मिल के वस्त्र	–)
सुबाहुकुमार	=)	मातृ-पितृ-सेवा	–)
ब्रह्मचर्य व्रत	=)	गज सुकुमार मुनि	–)॥
वैधव्य दीक्षा	–)		

डाक खर्च अलग है ।

मंगाने का पता—

सेक्रेटरी

जैन-हितेच्छु श्रावक-मण्डल, रतलाम ।